विषय

4

इस्लाम का उदय और विस्तार– लगभग 570–1200 ई.

आज जबकि हम इक्कीसवीं शताब्दी में प्रवेश कर चुके हैं, संसार के समस्त भागों में रहने वाले मुसलमानों की संख्या एक अरब से अधिक है। वे भिन्न-भिन्न राष्ट्रों के नागरिक हैं, अलग-अलग भाषाएँ बोलते हैं, और उनका पहनावा भी अलग-अलग किस्म का है। वे जिन तरीकों से मुसलमान बने वे भी भिन्न-भिन्न प्रकार के थे, और वे परिस्थितियाँ भी भिन्न-भिन्न थीं, जिनके कारण वे अपने-अपने रास्तों पर चले गए। फिर भी, मुस्लिम समाजों की जड़ें एक अधिक एकीकृत अतीत में समाहित हैं, जिसका प्रारंभ लगभग 1400 वर्ष पहले अरब प्रायद्वीप में हुआ था। हम इस अध्याय में इस्लाम के उदय और मिस्र से अफ़गानिस्तान तक के विशाल क्षेत्र में, उसके विस्तार के बारे में पढ़ने जा रहे हैं। 600 से 1200 तक की अवधि में यह इलाका इस्लामी सभ्यता का मूल क्षेत्र था। इन शताब्दियों में, इस्लामी समाज में अनेक प्रकार के राजनीतिक और सांस्कृतिक प्रतिरूप दिखते हैं। इस्लामी शब्द का प्रयोग यहाँ केवल उसके धार्मिक अर्थों में नहीं, बल्कि उस समूचे समाज और संस्कृति के लिए भी किया गया है, जो ऐतिहासिक दृष्टि से इस्लाम से संबद्ध रही है। इस समाज में जो कुछ भी घटित हो रहा था उसका उद्‌भव सीधे धर्म से नहीं हुआ था, बल्कि इसका उद्‌भव एक ऐसे समाज में हुआ था, जिसमें मुसलमानों को और उनके धर्म को सामाजिक रूप से प्रमुखता प्राप्त थी। ग़ैर-मुसलमान भले ही कुछ गौण सही लेकिन हमेशा इस समाज के अभिन्न भाग रहे, जैसे कि ईसाई प्रदेशों में यहूदी थे।

ऊपर दिए गए इस्लामी क्षेत्रों के सन् 600 से 1200 तक के इतिहास के बारे में हमारी समझ इतिवृत्तों अथवा *तवारीख़* पर (जिसमें घटनाओं का वृत्तांत कालक्रम के अनुसार दिया जाता है) और अर्ध-ऐतिहासिक कृतियों पर आधारित है, जैसे जीवन-चरित *(सिरा)*, पैगम्बर के कथनों और कृत्यों के अभिलेख *(हदीथ)* और क़ुरान के बारे में टीकाएँ *(तफ़सीर)*। इन कृतियों का निर्माण जिस सामग्री से किया गया था, वह प्रत्यक्षदर्शी वृत्तांतों *(अखबार)* का बहुत बड़ा संग्रह था, ये वृत्तांत विशेष कालावधि में मौखिक रूप से बताकर अथवा कागज़ पर लिखित रूप में लोगों तक पहुँचे। ऐसी प्रत्येक सूचना *(ख़बर)* की प्रामाणिकता की जाँच एक आलोचनात्मक तरीके से की जाती थी, जिसमें सूचना भेजने *(इस्नाद)* की शृंखला का पता लगाया जाता था और वर्णनकर्ता की विश्वसनीयता स्थापित की जाती थी। यद्यपि यह तरीका नितांत दोषरहित नहीं था, लेकिन मध्यकालीन मुस्लिम लेखक सूचना का चयन करने और अपने सूचनादाताओं के अभिप्राय को समझने के मामले में विश्व के अन्य भागों के अपने समकालीन लोगों की अपेक्षा अधिक सतर्क थे। विवादास्पद मुद्दों के मामले में, उन्होंने अपने स्रोतों से ज्ञात एक ही घटना के विभिन्न रूपांतरण प्रस्तुत किए, और उन्हें परखने का कार्य अपने पाठकों के लिए छोड़ दिया। उनके अपने समय के आस-पास की घटनाओं के बारे में उनका वर्णन अधिक सुनियोजित और विश्लेषणात्मक है और उसे अख़बारों का संग्रह-मात्र ही नहीं कहा जा सकता। अधिकतर ऐतिहासिक और अर्ध-ऐतिहासिक रचनाएँ अरबी भाषा में हैं। इनमें सर्वोत्तम कृति तबरी (Tabari) (923 में निधन) की *तारीख़* है, जिसका 38 खंडों में अंग्रेज़ी में अनुवाद किया गया है। फ़ारसी

© NCERT not to be republished

में इतिवृत्त संख्या की दृष्टि से बहुत कम हैं, लेकिन उनमें ईरान और मध्य एशिया के बारे में विस्तृत जानकारी दी गई है। सीरियाक (अरामेइक* की एक बोली) में लिखे ईसाई वृत्तांत ग्रंथ और भी कम हैं, लेकिन उनसे प्रारंभिक इस्लाम के इतिहास पर महत्त्वपूर्ण रोशनी पड़ती है। इतिवृत्तों के अलावा, हमें कानूनी पुस्तकें, भूगोल, यात्रा-वृत्तांत और साहित्यिक रचनाएँ जैसे कहानियाँ और कविताएँ प्राप्त होती हैं।

दस्तावेज़ी साक्ष्य (लेखों के खंडित अंश, जैसे सरकारी आदेश अथवा निजी पत्राचार) इतिहास-लेखन के लिए सर्वाधिक बहुमूल्य हैं, क्योंकि इनमें पूर्व चिंतन कर घटनाओं और व्यक्तियों का उल्लेख नहीं होता। लगभग समूचा साक्ष्य यूनानी और अरबी पैपाइरस (जो प्रशासनिक इतिहास के लिए बढ़िया है) और गेनिज़ा अभिलेखों से प्राप्त होता है। कुछ साक्ष्य पुरातत्वीय (उजड़े महलों में की गई खुदाई), मुद्राशास्त्रीय (सिक्कों का अध्ययन) और पुरालेखीय (शिलालेखों का अध्ययन) स्रोतों से उभर कर सामने आते हैं। ये आर्थिक इतिहास, कला इतिहास, नामों और तारीखों के प्रमाणीकरण के लिए बहुमूल्य हैं।

सही मायने में इस्लाम के इतिहास ग्रंथ लिखे जाने का कार्य उन्नीसवीं शताब्दी में जर्मनी और नीदरलैंड के विश्वविद्यालयों के प्रोफ़ेसरों द्वारा शुरू किया गया। मध्य पूर्व और उत्तरी अफ़्रीका में औपनिवेशिक हितों से फ़्रांसीसी और ब्रिटिश शोधकर्ताओं को भी इस्लाम का अध्ययन करने के लिए प्रोत्साहन मिला। ईसाई पादरियों ने इस्लाम के इतिहास की ओर बारीकी से ध्यान दिया और कुछ अच्छी पुस्तकें लिखीं, हालाँकि उनकी दिलचस्पी मुख्यतः इस्लाम की तुलना ईसाई धर्म से करने में रही। ये विद्वान, जिन्हें प्राच्यविद् कहा जाता है, अरबी और फ़ारसी के ज्ञान के लिए और मूल ग्रंथों के आलोचनात्मक विश्लेषण के लिए प्रसिद्ध हैं। इग्नाज़ गोल्डज़िहर (Ignaz Goldziher) हंगरी के एक यहूदी थे, जिन्होंने काहिरा के इस्लामी कॉलेज (अल-अज़हर) में अध्ययन किया और जर्मन भाषा में इस्लामी कानून और धर्मविज्ञान के बारे में नयी राह दिखाने वाली पुस्तकें लिखीं। इस्लाम के बीसवीं शताब्दी के इतिहासकारों ने अधिकतर प्राच्यविदों की रुचियों और उनके तरीकों का ही अनुसरण किया है। उन्होंने नए विषयों को शामिल करके इस्लाम के इतिहास के दायरे का विस्तार किया है, और अर्थशास्त्र, मानव-विज्ञान और सांख्यिकी जैसे संबद्ध विषयों का इस्तेमाल करके प्राच्य अध्ययन के बहुत-से पहलुओं का परिष्करण किया है। इस्लाम का इतिहास-लेखन इस बात का एक अच्छा उदाहरण है कि इतिहास के आधुनिक तरीकों का इस्तेमाल करके धर्म का अध्ययन किस प्रकार किया जा सकता है, ऐसे लोगों द्वारा जो स्वयं अध्ययन करने वाले धर्म के अनुयायी न हों।

*अरामेइक, हिब्रू और अरबी से संबंधित भाषा है। अशोक के अभिलेखों में भी इसका प्रयोग किया गया है।

अरब में इस्लाम का उदय–
धर्म-निष्ठा, समुदाय और राजनीति

सन् 612-632 में पैगम्बर मुहम्मद ने एक ईश्वर, अल्लाह की पूजा करने का और आस्तिकों *(उम्मा)* के एक ही समाज की सदस्यता का प्रचार किया। यह इस्लाम का मूल था। पैगम्बर मुहम्मद सौदागर थे और भाषा तथा संस्कृति की दृष्टि से अरबी थे। छठी शताब्दी की अरब संस्कृति अधिकांशतः अरब प्रायद्वीप और दक्षिणी सीरिया और मेसोपोटामिया के क्षेत्रों तक सीमित थी।

अरब लोग कबीलों** में बँटे हुए थे। प्रत्येक कबीले का नेतृत्व एक शेख द्वारा किया जाता था, जो कुछ हद तक पारिवारिक संबंधों के आधार पर, लेकिन ज़्यादातर व्यक्तिगत साहस, बुद्धिमत्ता और उदारता *(मुरव्वा)* के आधार पर चुना जाता था। प्रत्येक कबीले के अपने स्वयं के देवी-देवता होते थे, जो बुतों *(सनम)* के रूप में मस्जिदों में पूजे जाते थे। बहुत-से अरबी कबीले खानाबदोश

**इस संदर्भ में यह कहा जा सकता है कि कबीले रक्त-संबंधों (वास्तविक या काल्पनिक) पर संगठित समाज होते थे। अरबी कबीले वंशों से बने हुए होते थे अथवा बड़े परिवारों के समूह होते थे। ग़ैर-रिश्तेदार वंशों का, गढ़े हुए वंशक्रम के आधार पर इस आशा के साथ आपस में विलय होता था कि नया कबीला शक्तिशाली होगा। ग़ैर-अरब व्यक्ति (मवाली) कबीलों के प्रमुखों के संरक्षण से सदस्य बन जाते थे। लेकिन इस्लाम में धर्मांतरण के बाद भी मवालियों के साथ अरब मुसलमानों द्वारा समानता का व्यवहार नहीं किया जाता था और उन्हें अलग मस्जिदों में इबादत करनी पड़ती थी।

© NCERT not to be republished

(बद्दू यानी बेदूइन) होते थे, जो खाद्य (मुख्यत: खजूर) और अपने ऊँटों के लिए चारे की तलाश में रेगिस्तान में सूखे क्षेत्रों से हरे-भरे क्षेत्रों *(नखलिस्तानों)* की ओर जाते रहते थे। कुछ शहरों में बस गए थे और व्यापार अथवा खेती का काम करने लगे थे। पैगम्बर मुहम्मद का अपना कबीला, क़ुरैश, मक्का में रहता था और उसका वहाँ के मुख्य धर्मस्थल पर नियंत्रण था। इस स्थल का ढाँचा घनाकार था और उसे 'काबा' कहा जाता था, जिसमें बुत रखे हुए थे। मक्का के बाहर के कबीले भी काबा को पवित्र मानते थे, वे इस में अपने भी बुत रखते थे और हर वर्ष इस इबादतगाह की धार्मिक यात्रा *(हज)* करते थे। मक्का यमन और सीरिया के बीच के व्यापारी मार्गों के एक चौराहे पर स्थित था, जिससे शहर का महत्त्व और बढ़ गया था (मानचित्र 1)। काबा को एक ऐसी पवित्र जगह *(हरम)* माना जाता था, जहाँ हिंसा वर्जित थी और सभी दर्शनार्थियों को सुरक्षा प्रदान की जाती थी। तीर्थ–यात्रा और व्यापार ने खानाबदोश और बसे हुए कबीलों को एक दूसरे के साथ बातचीत करने और अपने विश्वासों और रीति–रिवाजों को आपस में बाँटने का मौका दिया। हालांकि बहुदेववादी अरबों को अल्लाह कहे जाने वाले परमात्मा की धारणा के बारे में अस्पष्ट सी ही जानकारी थी (संभवत: उनके बीच रहने वाले यहूदी और ईसाई क़बीलों के प्रभाव के कारण), लेकिन मूर्तियों और इबादतगाहों के साथ उनका लगाव सीधा और मज़बूत था।

महादूत जिबरील (Gabriel) का एक मध्यकालीन चित्र। यह कहा जाता है कि जिबरील पैगम्बर मुहम्मद के लिए संदेश लाया करते थे। यह भी माना जाता है कि जो शब्द उन्होंने सबसे पहले पुकारा वह इक़रा (पाठ करो) था। कुरान शब्द इक़रा से बना है। इस्लामी ब्रह्मांड विज्ञान में दूतों को सृष्टि–जीवन के तीन बौद्धिक रूपों में से एक माना जाता है। बाकी दो इनसान और जिन्न हैं।

सन् 612 के आस–पास पैगम्बर मुहम्मद ने अपने आपको खुदा का संदेशवाहक *(रसूल)* घोषित किया, जिन्हें यह प्रचार करने का आदेश दिया गया था कि केवल अल्लाह की ही इबादत यानी आराधना की जानी चाहिए। इबादत की विधियाँ बड़ी सरल थीं, जैसे दैनिक प्रार्थना *(सलत)* और नैतिक सिद्धांत, जैसे खैरात बाँटना और चोरी न करना। पैगम्बर मुहम्मद ने बताया कि उन्हें आस्तिकों *(उम्मा)* के ऐसे समाज की स्थापना करनी है, जो सामान्य धार्मिक विश्वासों के ज़रिये आपस में जुड़े हुए हों। इस समाज के लोग ईश्वर के सामने और अन्य धार्मिक समुदायों के समक्ष धर्म के अस्तित्व में अपना विश्वास *(शहादा)* प्रकट करते थे। पैगम्बर मुहम्मद के संदेश ने मक्का के उन लोगों को विशेष रूप से प्रभावित किया, जो अपने आपको व्यापार और धर्म के लाभों से वंचित महसूस करते थे और एक नयी सामुदायिक पहचान की बाट देखते थे। जो इस धर्म–सिद्धांत को स्वीकार कर लेते थे, उन्हें मुसलमान *(मुस्लिम)* कहा जाता था, उन्हें क़यामत के दिन मुक्ति और धरती पर रहते हुए समाज के संसाधनों में हिस्सा देने का आश्वासन दिया जाता था। मुसलमानों को शीघ्र ही मक्का के समृद्ध लोगों के भारी विरोध का सामना करना पड़ा, जिन्हें देवी–देवताओं का ठुकराया जाना बुरा लगा था और जिन्होंने नए धर्म को मक्का की प्रतिष्ठा और समृद्धि के लिए खतरा समझा था। सन् 622 में, पैगम्बर मुहम्मद को अपने अनुयायियों के साथ मदीना कूचकर जाने के लिए मजबूर होना पड़ा। पैगम्बर मुहम्मद की इस यात्रा *(हिजरा)* से इस्लाम के इतिहास में एक नया मोड़ आया। जिस वर्ष उनका आगमन मदीना में हुआ उस वर्ष से मुस्लिम कैलेंडर यानी हिजरी सन् की शुरुआत हुई।

© NCERT not to be republished

इस्लामी कैलेंडर

हिजरी सन् की स्थापना उमर की खिलाफत के समय की गई थी, जिसका पहला वर्ष 622 ई. में पड़ता था। हिजरी सन् की तारीख को जब अंग्रेज़ी में लिखा जाता है तो वर्ष के बाद ए.एच. लगाया जाता है। हिजरी वर्ष चन्द्र वर्ष है, जिसमें 354 दिन, 29 अथवा 30 दिनों के 12 महीने (मुहर्रम से धुल हिज्जा तक) होते हैं। प्रत्येक दिन सूर्यास्त के समय से और प्रत्येक महीना अर्धचन्द्र के दिन से शुरू होता है। हिजरी वर्ष सौर वर्ष से 11 दिन कम होता है। अत: हिजरी का कोई भी धार्मिक त्योहार, जिनमें रमज़ान के रोज़े, ईद और हज शामिल हैं, मौसम के अनुरूप नहीं होता। हिजरी कैलेंडर की तारीखों को ग्रैगोरियन कैलेंडर (जिसकी स्थापना पोप ग्रैगरी 13वें द्वारा 1582 ई. में की गई थी) की तारीखों के साथ मिलाने का कोई सरल तरीका नहीं है। इस्लामी (एच) और ग्रैगोरियन क्रिश्चियन (सी) वर्षों के बीच मोटे रूप से समानता की गणना निम्नलिखित फार्मूलों से की जा सकती है:

$$(\text{एच} \times 32/33) + 622 = \text{सी}$$

$$(\text{सी} - 622) \times 33/32 = \text{एच}$$

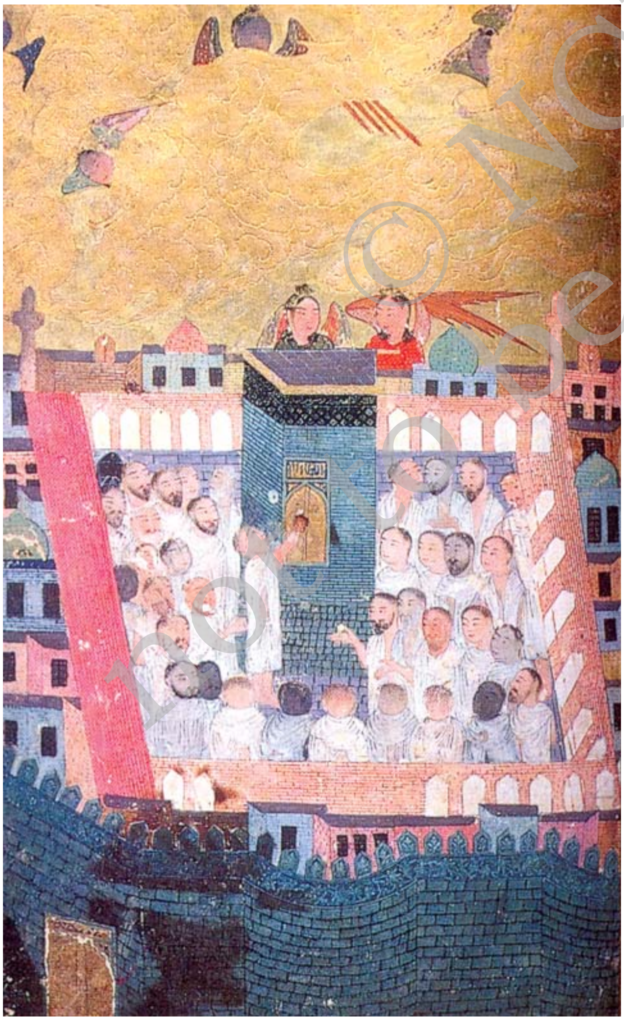

काबा में तीर्थयात्री, 15वीं शताब्दी की एक फ़ारसी हस्तलिपि से लिया गया चित्र। एक हाजी काबा के काले पत्थर (हज्र-अल-असवाद) को छू रहा है और कई दूत (मलाइका) उसे देख रहे हैं।

किसी धर्म का जीवित रहना उस पर विश्वास करने वाले लोगों के ज़िंदा रहने पर निर्भर करता है। इन लोगों के समुदाय को आंतरिक रूप से मज़बूत बनाना और उन्हें बाहरी खतरों से बचाना ज़रूरी होता है। सुदृढ़ीकरण और सुरक्षा के लिए राजनैतिक संस्थाओं की आवश्यकता होती है, जैसे राज्य और सरकारें, जो या तो पीछे से विरासत में प्राप्त होती हैं या फिर बाहर से प्राप्त की जाती हैं अथवा जिनका निर्माण बिलकुल नए सिरे से करना पड़ता है। पैगम्बर मुहम्मद ने इन तीनों तरीकों से मदीना में एक राजनैतिक व्यवस्था की स्थापना की, जिसने उनके अनुयाइयों को सुरक्षा प्रदान की, जिसकी उन्हें आवश्यकता थी और इसके साथ-साथ शहर में चल रही कलह को सुलझाया। उम्मा को एक बड़े समुदाय के रूप में बदला गया, ताकि मदीना के बहुदेववादियों और यहूदियों को पैगम्बर मुहम्मद के राजनैतिक नेतृत्व के अंतर्गत लाया जा सके। पैगम्बर मुहम्मद ने कर्मकांडों (जैसे उपवास) और नैतिक सिद्धांतों को बढ़ा कर और उन्हें परिष्कृत कर धर्म को अपने अनुयायियों के लिए मज़बूत बनाया। मुस्लिम समुदाय कृषि और व्यापार से प्राप्त होने वाले राजस्व और इसके अलावा खैरात-कर *(ज़कात)* से जीवित रहा। इसके अलावा, मुसलमान मक्का के काफिलों और

© NCERT not to be republished

निकट के नखलिस्तानों पर छापे *(ग़ज़्व)* भी मारते थे। इन छापों और धावों से मक्का के लोगों में प्रतिक्रिया हुई और मदीना के यहूदियों के साथ दरार उत्पन्न हुई। मक्का को जीत लिया गया और एक धार्मिक प्रचारक और राजनैतिक नेता के रूप में पैगम्बर मुहम्मद की प्रतिष्ठा दूर-दूर तक फैल गई। पैगम्बर मुहम्मद ने अब समुदाय की सदस्यता के लिए धर्मांतरण को एकमात्र कसौटी माना और इस बात पर बल दिया। रेगिस्तान की कठोर परिस्थितियों में, अरबों ने शक्ति और एकता को महत्त्वपूर्ण माना। पैगम्बर मुहम्मद की उपलब्धियों से प्रभावित होकर, बहुत से कबीलों, अधिकांशतः बद्दुओं, ने अपना धर्म बदलकर इस्लाम को अपना लिया और उस समाज में शामिल हो गए। पैगम्बर मुहम्मद द्वारा संरचित गठजोड़ का फैलाव समूचे अरब देश में हो गया। मदीना उभरते हुए इस्लामी राज्य की प्रशासनिक राजधानी और मक्का उसका धार्मिक केंद्र बन गया। काबा से बुतों को हटा दिया गया था, क्योंकि मुस्लिमों के लिए यह ज़रूरी था कि वे उस स्थल की ओर मुँह करके इबादत करें। पैगम्बर मुहम्मद को थोड़े ही समय में अरब प्रदेश के काफी बड़े भाग को एक नए धर्म, समुदाय और राज्य के अंतर्गत लाने में सफलता मिल गई। प्रारंभिक इस्लामी राज्य व्यवस्था काफी लंबे समय तक अरब कबीलों और कुलों का राज्य संघ बनी रही।

खलीफ़ाओं का शासन–विस्तार, गृहयुद्ध और सम्प्रदाय निर्माण

सन् 632 में पैगम्बर मुहम्मद के देहांत के बाद, कोई भी व्यक्ति वैध रूप से इस्लाम का अगला पैगम्बर होने का दावा नहीं कर सकता था। इसके परिणामस्वरूप, उनकी राजनैतिक सत्ता, उत्तराधिकार के किसी सुस्थापित सिद्धांत के अभाव में उम्मा को अंतरित कर दी गई। इससे नवाचारों के लिए अवसर उत्पन्न हुए, लेकिन इससे मुसलमानों में गहरे मतभेद भी पैदा हो गए। सबसे बड़ा नव-परिवर्तन यह हुआ कि खिलाफ़त की संस्था का निर्माण हुआ, जिसमें समुदाय का नेता *(अमीर अल-मोमिनिन)* पैगम्बर का प्रतिनिधि *(खलीफ़ा)* बन गया। पहले चार खलीफ़ाओं (632-661) ने पैगम्बर के साथ अपने गहरे और नज़दीकी संबंध के आधार पर अपनी शक्तियों का औचित्य स्थापित किया और पैगम्बर द्वारा दिए मार्ग-निर्देशों के अंतर्गत उनका कार्य जारी रखा। खिलाफ़त के दो प्रमुख उद्देश्य थेः एक तो कबीलों पर नियंत्रण कायम करना, जिनसे मिलकर उम्मा का गठन हुआ था, और दूसरा, राज्य के लिए संसाधन जुटाना।

पैगम्बर मुहम्मद के देहावसान के बाद, बहुत से कबीले इस्लामी राज्य से टूट कर अलग हो गए। कुछ कबीलों ने तो *उम्मा* के नमूने पर स्वयं अपने समाजों की स्थापना करने के लिए अपने स्वयं के पैगम्बर बना लिए। पहले खलीफ़ा अबू बकर ने अनेक अभियानों द्वारा विद्रोहों का दमन किया। दूसरे खलीफा उमर ने *उम्मा* की सत्ता के विस्तार की नीति को रूप प्रदान किया। खलीफ़ा जानता था कि उम्मा को व्यापार और करों से होने वाली मामूली आय के बल पर नहीं चलाया जा सकता। यह महसूस करते हुए कि अभियानों के रूप में मारे जाने वाले छापों से लूट की भारी धनराशि *(ग़नीमा)* प्राप्त की जा सकती है, खलीफ़ा और उसके सेनापतियों ने पश्चिम में बाइज़ेंटाइन साम्राज्य और पूर्व में ससानी साम्राज्य के इलाकों को जीतने के लिए अपने कबीलों की शक्ति जुटाई। बाइज़ेंटाइन और ससानी साम्राज्य जब अपनी शक्ति के सर्वोच्च शिखर पर थे, तो वे विशाल क्षेत्रों पर शासन करते थे और अरब में अपने राजनैतिक और वाणिज्यिक हितों को आगे बढ़ाने के लिए उनके पास बड़ी मात्रा में संसाधन थे। बाइज़ेंटाइन साम्राज्य ईसाई मत को बढ़ावा देता था और ससानी साम्राज्य ईरान के प्राचीन धर्म, ज़रतुश्त धर्म को संरक्षण प्रदान करता था। अरबों

© NCERT not to be republished

मानचित्र 1: इस्लामी क्षेत्र।

के आक्रमण के समय, इन दो साम्राज्यों की शक्ति में धार्मिक संघर्षों और अभिजात वर्गों के विद्रोहों के कारण गिरावट आ चुकी थी। इसके कारण युद्धों और संधियों के ज़रिए उन्हें अपने अधीन लाना आसान हो गया था। तीन सफल अभियानों (637-642) में, अरबों ने सीरिया, इराक़, ईरान और मिस्र को मदीना के नियंत्रण में ला दिया। सामरिक नीति, धार्मिक जोश और विरोधियों की कमज़ोरियों ने अरबों की सफलता में योगदान दिया। तीसरे खलीफ़ा, उथमान ने अपना नियंत्रण मध्य एशिया तक बढ़ाने के लिए और अभियान चलाए। पैगम्बर मुहम्मद की मृत्यु के एक दशक के अंदर, अरब-इस्लामी राज्य ने नील और ऑक्सस के बीच के विशाल क्षेत्र को अपने नियंत्रण में ले लिया। ये इलाके आज तक मुस्लिम शासन के अंतर्गत हैं।

जीते गए सभी प्रांतों में, खलीफ़ाओं ने नया प्रशासनिक ढाँचा लागू किया, जिनके अध्यक्ष गवर्नर *(अमीर)* और कबीलों के मुखिया *(अशरफ)* थे। केंद्रीय राजकोष *(बैत अल-माल)* अपना राजस्व मुसलमानों द्वारा अदा किए जाने वाले करों से और इसके अलावा धावों से मिलने वाली लूट में अपने हिस्से से प्राप्त करता था। खलीफ़ा के सैनिक, जिनमें अधिकतर बेदुइन थे, रेगिस्तान के किनारों पर बसे शहरों, जैसे कुफ़ा और बसरा में शिविरों में रहते थे, ताकि वे अपने प्राकृतिक आवास स्थलों के निकट और खलीफ़ा की कमान के अंतर्गत बने रहें। शासक वर्ग और सैनिकों को लूट में हिस्सा मिलता था और मासिक अदायगियाँ *(अता)* प्राप्त होती थीं। ग़ैर-मुस्लिम लोगों द्वारा करों *(खराज* और *जिज़िया)* को अदा करने पर, उनका सम्पत्ति का और धार्मिक कार्यों को संपन्न करने का अधिकार बना रहता था। यहूदी और ईसाई राज्य के संरक्षित लोग *(धिम्मीस)* घोषित किए गए और अपने सामुदायिक कार्यों को करने के लिए उन्हें काफ़ी अधिक स्वायत्तता दी गई थी।

© NCERT not to be republished

राजनैतिक विस्तार और एकीकरण का कार्य अरब कबीले सरलता से नहीं कर पाए। राजक्षेत्र के विस्तार से, संसाधनों और पदों के वितरण के बारे में पैदा हुए झगड़े उम्मा की एकता के लिए खतरा बन गए। प्रारंभिक इस्लामी राज्य के शासन में मक्का के क़ुरैश लोगों का ही बोलबाला था। तीसरा खलीफ़ा, उथमान (644-56) भी एक क़ुरैश था और उसने अधिक नियंत्रण प्राप्त करने के लिए प्रशासन को अपने ही आदमियों से भर दिया। इससे राज्य का मक्काई स्वरूप और अधिक ज़ोरदार हो गया। परिणामस्वरूप अन्य कबीलों के साथ झगड़े पैदा हो गए। इराक़ और मिस्र में तो विरोध था ही अब मदीने में भी विरोध उत्पन्न हो जाने के परिणामस्वरूप उथमान की हत्या कर दी गई। उथमान की मृत्यु के बाद अली को चौथा खलीफ़ा नियुक्त किया गया।

अली द्वारा (656-61) उन लोगों के खिलाफ़, जो मक्का के अभिजात-तंत्र का प्रतिनिधित्व करते थे, दो युद्ध लड़े जाने के बाद, मुसलमानों में दरार और गहरी हो गई। अली के समर्थकों और शत्रुओं ने बाद में इस्लाम के दो मुख्य सम्प्रदाय शिया और सुन्नी, बना लिए। अली ने अपने आपको कुफा में स्थापित कर लिया और मुहम्मद की पत्नी, आयशा के नेतृत्व वाली सेना को 'ऊँट की लड़ाई' (657) में पराजित कर दिया। लेकिन, वह उथमान के नातेदार और सीरिया के गवर्नर मुआविया के नेतृत्व वाले गुट का दमन नहीं कर सका। अली का दूसरा युद्ध, जो सिफ्फिन (उत्तरी मेसोपोटामिया) में हुआ था, संधि के रूप में समाप्त हुआ, जिसने उसके अनुयायियों को दो धड़ों में बाँट दिया; कुछ उसके वफादार बने रहे, जबकि अन्य लोगों ने उसका साथ छोड़ दिया और वे खरजी कहलाने लगे। इसके शीघ्र बाद, एक खरजी द्वारा कुफा में एक मस्जिद में अली की हत्या कर दी गई। उसकी मृत्यु के बाद, उसके अनुयायियों ने उसके पुत्र, हुसैन और उसके वंशजों के प्रति अपनी निष्ठा प्रकट की। मुआविया ने 661 में अपने आपको अगला खलीफा घोषित कर दिया और उमय्यद वंश की स्थापना की, जो 750 तक चलता रहा।

गृह युद्धों के बाद, ऐसा प्रतीत होता था कि अरबों का आधिपत्य विखंडित हो जाएगा। इस बात के भी संकेत थे कि कबाइली विजेता अपने अधीनस्थ लोगों की परिष्कृत संस्कृति को अपना रहे थे। कुरैश कबीले के एक समृद्ध वंश उमय्यद के अधीन सुदृढ़ीकरण का दूसरा दौर आया।

उमय्यद और राजतंत्र का केंद्रीकरण

बड़े-बड़े क्षेत्रों पर विजय प्राप्त होने से मदीना में स्थापित खिलाफ़त नष्ट हो गई और उसका स्थान बढ़ते हुए सत्तावादी राजतंत्र ने ले लिया। उमय्यदों ने ऐसे बहुत से राजनीतिक उपाय किए जिनसे उम्मा के भीतर उनका नेतृत्व सुदृढ़ हो गया। पहले उमय्यद खलीफा मुआविया ने दमिश्क को अपनी राजधानी बनाया और फिर बाइज़ेंटाइन साम्राज्य की राजदरबारी रस्मों और प्रशासनिक संस्थाओं को अपना लिया। उसने वंशगत उत्तराधिकार की परंपरा भी प्रारंभ की और प्रमुख मुसलमानों को मना लिया कि वे उसके पुत्र को उसका वारिस स्वीकार करें। उसके बाद आने वाले खलीफ़ाओं ने भी ये नवीन परिवर्तन अपना लिए, जिसके फलस्वरूप उमय्यद नब्बे वर्ष तक और अब्बासी दो शताब्दियों तक सत्ता में बने रहे।

उमय्यद राज्य अब एक साम्राज्यिक शक्ति बन चुका था; अब वह सीधे इस्लाम पर आधारित नहीं था, बल्कि वह शासन-कला और सीरियाई सैनिकों की वफादारी के बल पर चल रहा था। प्रशासन में ईसाई सलाहकार और इसके अलावा ज़रतुश्त लिपिक और अधिकारी भी शामिल थे। लेकिन, इस्लाम उमय्यद शासन को वैधता प्रदान करता रहा। उमय्यद हमेशा

© NCERT not to be republished

पथरीले टीले के ऊपर अब्द अल-मलिक द्वारा निर्मित चट्टान का गुम्बद, इस्लामी वास्तुकला का यह पहला बड़ा नमूना है। जेरूसलम नगर की मुस्लिम संस्कृति के प्रतीक रूप में इस स्मारक का निर्माण किया गया। पैगम्बर मुहम्मद की स्वर्ग की ओर की रात्रि यात्रा (मिराज) से यह स्मारक जुड़ गया। यह इसका रहस्यमय महत्त्व है।

एकता के लिए अनुरोध करते रहे और विद्रोहों को इस्लाम के नाम पर दबाते रहे। उन्होंने अपनी अरबी सामाजिक पहचान बनाए रखी। अब्द अल-मलिक और उसके उत्तराधिकारियों के शासनकाल में अरब और इस्लाम दोनों पहचानों पर मज़बूती से बल दिया जाता रहा। अब्द अल-मलिक ने जो नीतियाँ अपनाईं, उनमें अरबी को प्रशासन की भाषा के रूप में अपनाना और इस्लामी सिक्कों को जारी करना शामिल था। खिलाफत में जो सोने के दीनार और चाँदी के दिरहम चल रहे थे, वे रोमन और ईरानी सिक्कों *(दिनारियस* और *द्राख्मा)* की अनुकृतियाँ थे, जिन पर सलीब और अग्नि-वेदी के चिह्न बने होते थे और यूनानी और पहलवी (ईरान की भाषा) भाषा में लेख अंकित होते थे। इन चिह्नों को हटा दिया गया और सिक्कों पर अब अरबी भाषा में लिखा गया। अब्द अल-मलिक ने जेरूसलम में डोम ऑफ रॉक बनवाकर अरब-इस्लामी पहचान के विकास में भी एक अत्यंत प्रदर्शनीय योगदान दिया।

सिक्कों में अब्द अल-मलिक द्वारा सुधार

नीचे दिखाए गए सिक्कों से यह पता चलता है कि बाइज़ेंटाइन मुद्रा प्रणाली से अरबी-इस्लामी प्रणाली में परिवर्तन कैसे आया। दूसरे सिक्के पर दिखाया गया लंबे बालों व दाढ़ी वाला खलीफा पारंपरिक अरबी कपड़े पहने हुए है। उसके हाथ में तलवार है। उस समय के मुसलमानों की जो तस्वीरें हमें मिली हैं उनमें यह पहली है। अपने में यह ख़ास भी है क्योंकि बाद में कला व शिल्प में प्राणियों के प्रतिरूपण के प्रति विरोध होने लगा। अब्द अल-मलिक के मौद्रिक सुधार उसके राज्य-वित्त के पुनर्गठन से जुड़े हुए थे। अब्द अल-मलिक की सिक्के ढालने की प्रक्रिया इतनी सफल थी कि नीचे दिखाए गए तीसरे सिक्के के प्रारूप व वज़न के अनुसार ही कई शताब्दियों तक सिक्के ढाले जाते रहे।

बाइज़ेंटाइन का सोने का बना सॉलिडस, जिसमें सम्राट हेराक्लिअस व उसके दो पुत्रों को दिखाया गया है।

अब्द अल-मलिक द्वारा अपने नाम व रूप के साथ ढाला गया सोने का दीनार।

बदला हुआ दीनार जिस पर केवल लिखावट मिलती है। इस पर कलिमा गढ़ी हुई है। 'अल्लाह के सिवाय कोई अन्य खुदा नहीं है और अल्लाह का कोई शरीक नहीं है।'

© NCERT not to be republished

अब्बासी क्रांति

मुस्लिम राजनैतिक व्यवस्था के केंद्रीकरण की सफलता के लिए उमय्यद वंश को भारी कीमत चुकानी पड़ी। *दवा* नामक एक सुनियोजित आंदोलन ने उमय्यद वंश को उखाड़ फेंका। 750 में इस वंश की जगह अब्बासियों ने ले ली जो मक्का के ही थे। अब्बासियों ने उमय्यद शासन को दुष्ट बताया और यह दावा किया कि वे पैगम्बर मुहम्मद के मूल इस्लाम की पुनर्स्थापना करेंगे। इस क्रांति से केवल वंश का ही परिवर्तन नहीं हुआ बल्कि इस्लाम के राजनैतिक ढाँचे और उसकी संस्कृति में भी बदलाव आए।

अब्बासियों का विद्रोह खुरासान (पूर्वी ईरान) के बहुत दूर स्थित क्षेत्र में प्रारंभ हुआ, जहाँ पर दमिश्क से बहुत तेज़ दौड़ने वाले घोड़े से 20 दिन में पहुँचा जा सकता था। खुरासान में अरब-ईरानियों की मिली-जुली आबादी थी, जिसे विभिन्न कारणों से एकजुट किया जा सका। यहाँ पर अरब सैनिक अधिकांशतः इराक से आए थे और वे सीरियाई लोगों के प्रभुत्व से नाराज़ थे। खुरासान के अरब नागरिक उमय्यद शासन को इसलिए नापसंद करते थे कि उन्होंने करों में रियायतें और विशेषाधिकार देने के जो वायदे किए थे, वे पूरे नहीं किए गए थे। जहाँ तक ईरानी मुसलमानों *(मवालियों)* का संबंध है, उन्हें अपनी जातीय चेतना से ग्रस्त अरबों के तिरस्कार का शिकार होना पड़ा था और वे उमय्यदों को बाहर निकालने के किसी भी अभियान में शामिल होने के इच्छुक थे।

दूसरी अब्बासी राजधानी समारा की अल-मुतव्वकिल की महान मस्जिद। इसे 850 में बनाया गया। इसकी ईंट की बनी हुई मीनार 50 मीटर ऊँची है। मेसोपोटामिया की वास्तुकला की परंपराओं से प्रेरित यह कई शताब्दियों तक दुनिया की सबसे बड़ी मस्जिद थी।

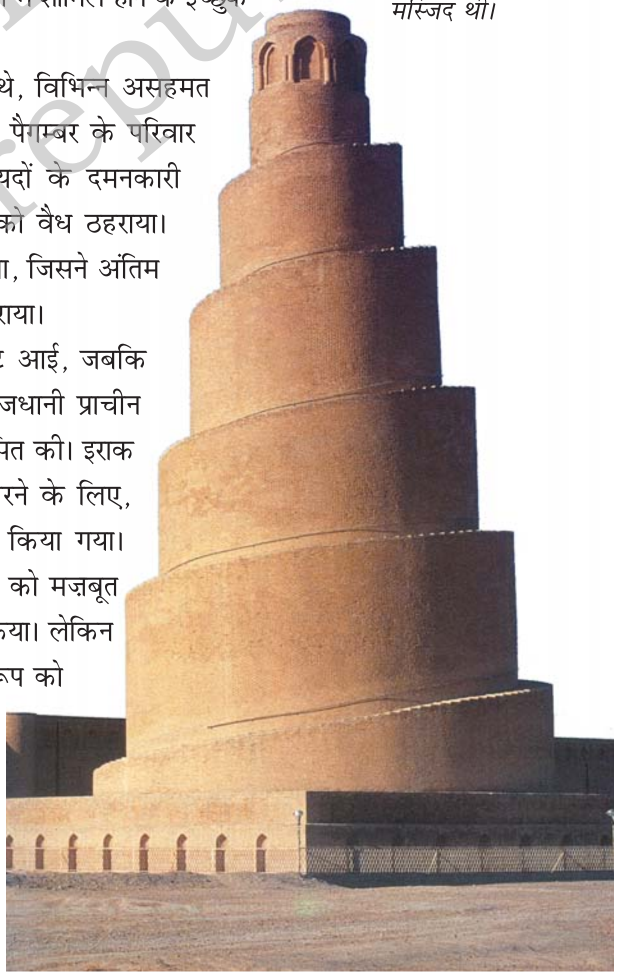

अब्बासियों ने, जो पैगम्बर के चाचा अब्बास के वंशज थे, विभिन्न असहमत समूहों का समर्थन प्राप्त कर लिया और यह वचन देकर कि पैगम्बर के परिवार *(अहल अल-बयत)* का कोई मसीहा *(महदी)* उन्हें उमय्यदों के दमनकारी शासन से मुक्त कराएगा, सत्ता प्राप्त करने के अपने प्रयत्न को वैध ठहराया। उनकी सेना का नेतृत्व एक ईरानी गुलाम अबू मुस्लिम ने किया, जिसने अंतिम उमय्यद खलीफा, मारवान, को ज़ब नदी पर हुई लड़ाई में हराया।

अब्बासी शासन के अंतर्गत, अरबों के प्रभाव में गिरावट आई, जबकि ईरानी संस्कृति का महत्त्व बढ़ गया। अब्बासियों ने अपनी राजधानी प्राचीन ईरानी महानगर टेसीफोन के खंडहरों के निकट, बग़दाद में स्थापित की। इराक और खुरासान की अपेक्षाकृत अधिक भागीदारी सुनिश्चित करने के लिए, सेना और नौकरशाही का पुनर्गठन गै़र-कबीलाई आधार पर किया गया। अब्बासी शासकों ने खिलाफ़त की धार्मिक स्थिति और कार्यों को मज़बूत बनाया और इस्लामी संस्थाओं और विद्वानों को संरक्षण प्रदान किया। लेकिन सरकार और साम्राज्य की ज़रूरतों ने उन्हें राज्य के केंद्रीय स्वरूप को बनाए रखने के लिए मजबूर किया। उन्होंने उमय्यदों के शानदार शाही वास्तुकला और राजदरबार के व्यापक समारोहों की परंपराओं को बराबर कायम रखा। जिस शासन को पहले इस बात पर गर्व था कि उसने राजतंत्र को समाप्त कर दिया है उसे ही राजतंत्र को फिर से स्थापित करने के लिए मजबूर होना पड़ा।

© NCERT not to be republished

क्रियाकलाप 1

खिलाफ़त की बदलती हुई राजधानियों की पहचान कीजिए। आपके अनुसार सापेक्षिक तौर पर इनमें से कौन-सी केंद्र में स्थित थी?

खिलाफ़त का विघटन और सल्तनतों का उदय

अब्बासी राज्य नौवीं शताब्दी से कमज़ोर होता गया, क्योंकि दूर के प्रांतों पर बग़दाद का नियंत्रण कम हो गया था, और इसका एक कारण यह भी था कि सेना और नौकरशाही में अरब-समर्थक और ईरान-समर्थक गुटों में आपस में झगड़ा हो गया था। सन् 810 में, खलीफ़ा हारुन अल-रशीद के पुत्रों, अमीन और मामुन के समर्थकों के बीच गृह युद्ध शुरू हो गया, जिससे गुटबन्दी और गहरी हो गई और तुर्की गुलाम अधिकारियों *(मामलुक)* का एक नया शक्ति गुट बन गया। शियाओं ने एक बार फिर सुन्नी रूढ़िवादिता के साथ सत्ता के लिए प्रतियोगिता की। बहुत से नए छोटे राजवंश उत्पन्न हो गए: खुरासान और ट्रांसोक्सियाना यानी तूरान अथवा ऑक्सस के पार वाले इलाके में ताहिरी और समानी वंश और मिस्र तथा सीरिया में तुलुनी वंश। अब्बासियों की सत्ता जल्दी ही मध्य इराक और पश्चिमी ईरान तक सीमित रह गई। सन् 945 में वह भी छिन गई, जब ईरान के कैस्पियन क्षेत्र *(डेलाम)* के बुवाही नामक शिया वंश ने बग़दाद पर कब्ज़ा कर लिया। बुवाही शासकों ने विभिन्न उपाधियाँ धारण कीं, जिनमें एक प्राचीन ईरानी पदवी शहंशाह (राजाओं का राजा) भी शामिल थी, लेकिन 'खलीफ़ा' की पदवी धारण नहीं की। उन्होंने अब्बासी खलीफ़ा को अपने सुन्नी प्रजाजनों के प्रतीकात्मक मुखिया के रूप में बनाए रखा।

खिलाफ़त को समाप्त न करने का फैसला बड़ा चतुराईपूर्ण था, क्योंकि एक अन्य शिया राजवंश, फ़ातिमी, की महत्त्वाकांक्षा थी कि वह इस्लामी जगत पर शासन करे। फ़ातिमी का संबंध शिया सम्प्रदाय के एक उप-सम्प्रदाय इस्माइली से था और उनका दावा था कि वे पैगम्बर की बेटी, फ़ातिमा, के वंशज हैं और इसलिए वे इस्लाम के एकमात्र न्यायसंगत शासक हैं। उत्तरी अफ़्रीका में अपने अड्डे से, उन्होंने 969 में मिस्र को जीता और फ़ातिमी खिलाफ़त की स्थापना की। मिस्र की पुरानी राजधानी, फ़ुस्तात की बजाय एक नए शहर, काहिरा को राजधानी बनाया गया, जिसकी स्थापना मंगल ग्रह *(मिरिख,* जिसे *अल-क़ाहिर* भी कहा जाता है) के उदय होने के दिन की गई थी। दोनों प्रतिस्पर्धी राजवंशों ने शिया प्रशासकों, कवियों और विद्वानों को आश्रय प्रदान किया।

सन् 950 से 1200 के बीच, इस्लामी समाज किसी एकल राजनीतिक व्यवस्था अथवा किसी संस्कृति की एकल भाषा *(अरबी)* से नहीं बल्कि सामान्य आर्थिक और सांस्कृतिक प्रतिरूपों से एकजुट बना रहा। राजनीतिक विभाजनों के बावजूद, एकता कायम रखने के लिए राज्य और समाज को अलग करके देखा गया और इस्लामी उच्च संस्कृति की भाषा के रूप में फ़ारसी का विकास किया गया। इस एकता के निर्माण में बौद्धिक परंपराओं के बीच संवाद की परिपक्वता की भी भूमिका थी। विद्वान, कलाकार और व्यापारी इस्लामी दुनिया के भीतर मुक्त रूप से घूमते-फिरते और आते-जाते थे और विचारों तथा तौर-तरीकों का प्रसार सुनिश्चित करते थे। इनमें से कुछ धर्मांतरण के कारण गाँवों के स्तर तक नीचे पहुँच गए थे। मुसलमानों की जनसंख्या जो उमय्यद काल और प्रारंभिक अब्बासी काल में 10 प्रतिशत से कम थी, आगे चलकर बहुत अधिक हो गई और फिर अन्य धर्मों से अलग धर्म और सांस्कृतिक प्रणाली के रूप में इस्लाम की पहचान अधिक सुस्पष्ट हो गई। इससे धर्मांतरण संभव और अर्थवान प्रतीत हुआ।

दसवीं और ग्यारहवीं शताब्दियों में तुर्की सल्तनत के उदय से अरबों और ईरानियों के साथ एक तीसरा प्रजातीय समूह जुड़ गया। तुर्क, तुर्किस्तान के मध्य एशियाई घास के मैदानों (अरल सागर के उत्तर-पूर्व में चीन की सीमाओं तक) के खानाबदोश कबाइली लोग थे, जिन्होंने धीरे-धीरे इस्लाम

© NCERT not to be republished

को अपना लिया (देखिए विषय 5)। वे कुशल सवार और योद्धा थे और वे ग़ुलामों और सैनिकों के रूप में अब्बासी, समानी और बुवाही प्रशासनों में शामिल हो गए और अपनी वफ़ादारी तथा सैनिक योग्यताओं के कारण तरक्की करके उच्च पदों पर पहुँच गए। गज़नी सल्तनत की स्थापना अल्पतिगिन (961) द्वारा की गई थी और उसे गज़नी के महमूद (998–1030) द्वारा मज़बूत किया गया। बुवाहियों की तरह, गज़नवी एक सैनिक वंश था, जिनके पास तुर्कों और भारतीयों जैसी पेशेवर सेना थी (मासूद का एक सेनापति भारतीय था जिसका नाम तिलक था)। लेकिन उनकी सत्ता और शक्ति का केंद्र खुरासान और अफ़गानिस्तान में था और उनके लिए अब्बासी ख़लीफ़े प्रतिद्वंदी नहीं थे, बल्कि उनकी वैधता के स्रोत थे। महमूद इस बारे में सचेत था कि वह एक गुलाम का बेटा है और वह खलीफ़ा से सुलतान की उपाधि प्राप्त करने के लिए बहुत इच्छुक था। खलीफ़ा शिया सत्ता के प्रति संतुलनकारी घड़े के रूप में गज़नवी को, जो सुन्नी था, समर्थन देने के लिए राज़ी था।

सलजुक तुर्क समानियों और क़ाराखानियों (आगे पूर्व की ओर से आए ग़ैर-मुस्लिम तुर्क) की सेनाओं में सैनिकों के रूप में तुरान में दाखिल हो गए। उन्होंने बाद में अपने आपको दो भाइयों, तुगरिल और छागरी बेग के नेतृत्व में एक शक्तिशाली समूह के रूप में स्थापित कर लिया। गज़नी के महमूद की मृत्यु के बाद की अव्यवस्था का लाभ उठाते हुए, सल्जुकों ने 1037 में खुरासान को जीत लिया और निशापुर* को अपनी पहली राजधानी बनाया। इसके बाद सल्जुकों ने अपना ध्यान पश्चिमी फारस और इराक (जहाँ बुवाहियों का शासन था) की ओर दिया और 1055 में बग़दाद को पुनः सुन्नी शासन के अधीन कर दिया। खलीफ़ा अल-क़ायम ने तुगरिल बेग को सुलतान की उपाधि प्रदान की, जो एक ऐसी कार्रवाई थी जिसने धार्मिक सत्ता को राजनीतिक सत्ता से अलग कर दिया। दोनों सल्जुक़ भाइयों ने परिवार द्वारा शासन चलाने की कबाइली धारणा के अनुसार इकट्ठे मिल कर शासन किया। भतीजा, अल्प अरसलन उसका उत्तराधिकारी बना। अल्प अरसलन के शासन के दौरान सलजुक़ साम्राज्य का विस्तार अनातोलिया (आधुनिक तुर्की) तक हो गया।

*शिक्षा का एक महत्त्वपूर्ण फारसी-इस्लामी केंद्र और उमर खय्याम का जन्म स्थान।

ग्यारहवीं से तेरहवीं शताब्दी तक की अवधि में यूरोपीय ईसाई और अरब राज्यों के बीच काफी अधिक लड़ाई-झगड़े हुए। इसकी चर्चा नीचे की गई है। फिर तेरहवीं शताब्दी के प्रारंभ में, मुस्लिम जगत ने अपने आपको एक बहुत बड़े विनाश के कगार पर पाया। यह मंगोलों की ओर से आने वाला खतरा था; यह सुव्यवस्थित सभ्यता पर 'खानाबदोशों' की ओर से होने वाला अंतिम किंतु सबसे अधिक निर्णायक आक्रमण था (देखिए विषय 5)।

धर्मयुद्ध

मध्यकाल के इस्लामी समाजों में, ईसाइयों को पुस्तक वाले लोग *(अहल अल-किताब)* समझा जाता था, क्योंकि उनके पास उनका अपना धर्मग्रंथ (*न्यू टेस्टामेंट* अथवा *इंजील*) था। व्यापारियों, तीर्थयात्रियों, राजदूतों और यात्रियों के रूप में मुस्लिम राज्यों में आने वाले ईसाइयों को सुरक्षा *(अमन)* प्रदान की जाती थी। इन क्षेत्रों में वे क्षेत्र भी शामिल थे, जिन पर कभी बाइज़ेंटाइन साम्राज्य का कब्ज़ा था, विशेष रूप से फिलिस्तीन की पवित्र भूमि। अरबों ने जेरूसलम को 638 में जीत लिया था, लेकिन वह ईसाइयों की कल्पना में ईसा के क्रूसारोपण और पुनरुज्जीवन के स्थान के रूप में हमेशा विद्यमान था। ईसाई यूरोप में मुस्लिम जगत की छवि के निर्माण में यह एक महत्त्वपूर्ण तत्व था।

© NCERT not to be republished

अलेप्पो एक हितित्ता असीरियाई व हेलेनिक स्थल। अरबों ने 636 में इस पर अधिकार कर लिया। अगले हज़ार वर्ष तक यह लड़ाई चलती रही। चित्र में युद्धरत धर्मयोद्धाओं को देखिए- नसूह अल-मतरकी का यात्रा वृत्तांत, 1534-36।

मुस्लिम जगत के प्रति शत्रुता ग्याहरवीं शताब्दी में और अधिक स्पष्ट हो गई। नार्मनों, हंगरीवासियों और कुछ स्लाव लोगों को ईसाई बना लिया गया था और केवल मुसलमान मुख्य शत्रु रह गए थे। ग्याहरवीं शताब्दी में पश्चिमी यूरोप के सामाजिक और आर्थिक संगठनों में भी परिवर्तन हो गया था, जिससे ईसाई जगत और इस्लामी जगत के बीच शत्रुता को बढ़ाने में योगदान मिला। पादरी और योद्धा वर्ग (पहले दो वर्ग-देखिए विषय 6) राजनीतिक स्थिरता और कृषि तथा व्यापार पर आधारित आर्थिक विकास सुनिश्चित करने के प्रयत्न कर रहे थे। प्रतिस्पर्धी सामंती राज्यों के बीच सैनिक मुठभेड़ की संभावनाओं और लूटमार पर आधारित अर्थव्यवस्था के पुनर्उदय को 'ईश्वरीय शांति' (पीस ऑफ गॉड) आंदोलन द्वारा रोका गया था। कुछ क्षेत्रों में, पूजास्थलों के निकट, चर्च के कैलेंडर में पवित्र मानी जाने वाली कुछ अवधियों और कुछ कमज़ोर सामाजिक समूहों जैसे पादरियों और आम लोगों के खिलाफ़ सभी प्रकार की सैनिक हिंसा वर्जित की गई थी। ईश्वरीय शांति आंदोलन ने सामंती समाज की आक्रमणकारी प्रवृत्तियों को ईसाई जगत से हटा कर ईश्वर के 'शत्रुओं' की ओर मोड़ दिया। इससे एक ऐसे वातावरण का निर्माण हो गया, जिसमें अविश्वासियों *(विधर्मियों)* के खिलाफ़ लड़ाई न केवल उचित अपितु प्रशंसनीय समझी जाने लगी।

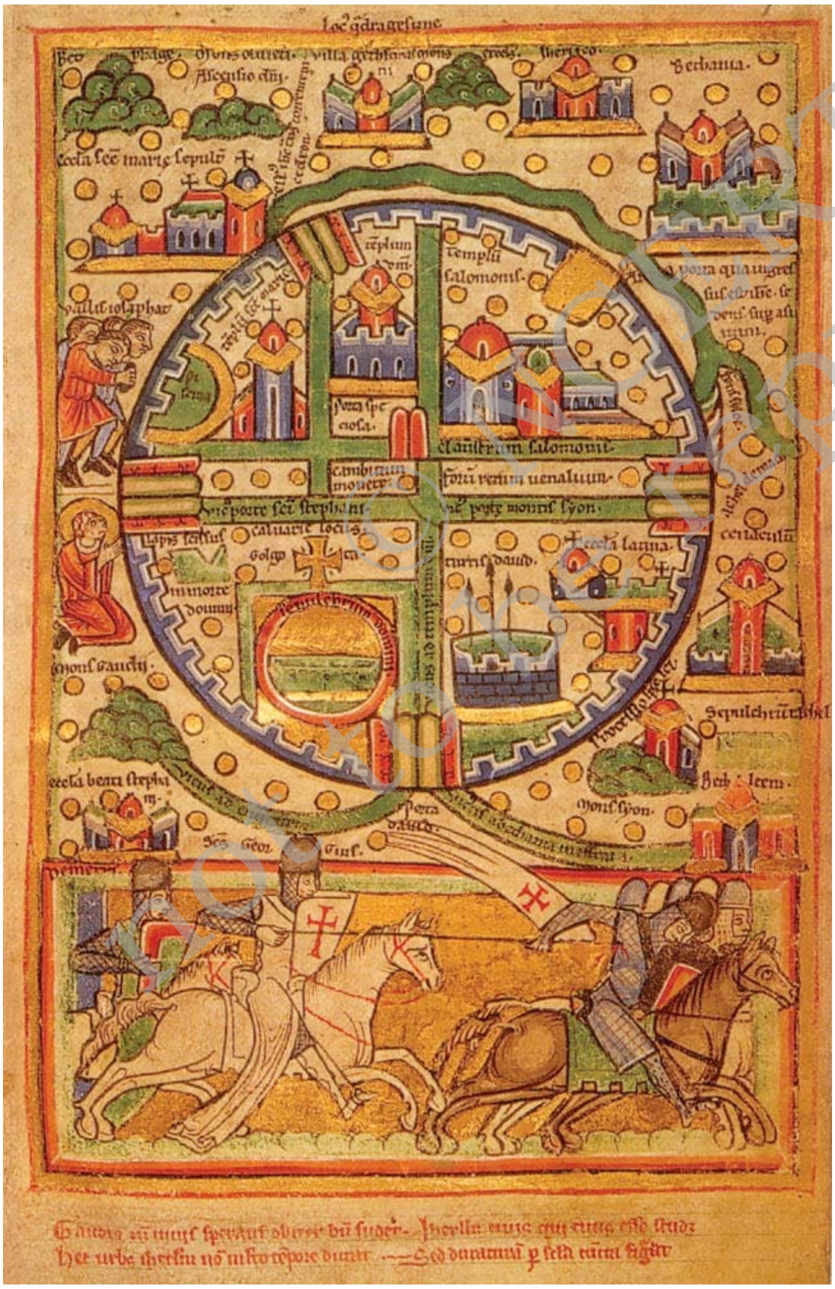

1092 में बग़दाद के सलजुक़ सुलतान, मलिक शाह की मृत्यु के बाद उसके साम्राज्य का विघटन हो गया। इससे बाइज़ेंटाइन सम्राट एलेक्सियस प्रथम (Alexius I) को एशिया माइनर और उत्तरी सीरिया को फिर से हथियाने का मौका मिल गया। पोप अर्बन द्वितीय (Urban II) के लिए ईसाई धर्म की जीवट प्रवृत्ति को फिर से जीवित करने का एक अवसर था। 1095 में, पोप ने बाइज़ेंटाइन सम्राट के साथ मिलकर पुण्य देश (होली लैंड) को मुक्त कराने के लिए ईश्वर के नाम पर युद्ध के लिए

© NCERT not to be republished

आह्वान किया। 1095 और 1291 के बीच पश्चिमी यूरोपीय ईसाइयों ने पूर्वी भूमध्यसागर *(लैवेंट)* के तटवर्ती मैदानों में मुस्लिम शहरों के खिलाफ़ युद्धों की योजना बनाई और फिर लगातार अनेक युद्ध लड़े गए। इन लड़ाइयों को बाद में 'धर्मयुद्ध'* का नाम दिया गया।

*पोप ने युद्ध लड़ने की शपथ लेने वालों को समारोहपूर्वक क्रास प्रदान करने का आदेश दिया।

प्रथम धर्मयुद्ध (1098–1099) में, फ्रांस और इटली के सैनिकों ने सीरिया में एंटीओक और जेरूसलम पर कब्ज़ा कर लिया। शहर में मुसलमानों और यहूदियों की विद्वेषपूर्ण हत्याएँ की गईं और शहर पर विजय प्राप्त कर ली गई, जिसके बारे में ईसाइयों और मुसलमानों दोनों ने काफी लिखा है। मुस्लिम लेखकों ने ईसाइयों (जिन्हें फिरंगी अथवा *इफ़्रिंजी* कहा जाता था) के आगमन का उल्लेख पश्चिमी लोगों के आक्रमण के रूप में किया है। इन्होंने सीरिया–फिलिस्तीन के क्षेत्र में जल्दी ही धर्मयुद्ध द्वारा जीते गए चार राज्य स्थापित कर लिए। इन क्षेत्रों को सामूहिक रूप से 'आउटरैमर' (समुद्रपारीय भूमि) कहा जाता था और बाद के धर्मयुद्ध इसकी रक्षा और विस्तार के लिए किए गए।

आउटरैमर प्रदेश कुछ समय तक भली–भांति कायम रहा, लेकिन जब तुर्कों ने 1144 में एडेस्सा पर कब्ज़ा कर लिया तो पोप ने एक दूसरे धर्मयुद्ध (1145–1149) के लिए अपील की। एक जर्मन और फ्रांसीसी सेना ने दमिश्क पर कब्ज़ा करने की कोशिश की, लेकिन उन्हें हरा कर घर लौटने के लिए मजबूर कर दिया गया। इसके बाद आउटरैमर की शक्ति धीरे–धीरे क्षीण होती गई। धर्मयुद्ध का जोश अब खत्म हो गया और ईसाई शासकों ने विलासिता से जीना और नए–नए इलाकों के लिए लड़ाई करना शुरू कर दिया। सलाह अल–दीन *(सलादीन)* ने एक मिस्री–सीरियाई साम्राज्य स्थापित किया और ईसाइयों के विरुद्ध धर्मयुद्ध करने का आह्वान किया, और उन्हें 1187 में पराजित कर दिया। उसने पहले धर्मयुद्ध के लगभग एक शताब्दी बाद, जेरूसलम पर फिर से कब्ज़ा कर लिया। उस समय के अभिलेखों से संकेत मिलता है कि ईसाई लोगों के साथ सलाह अल–दीन का व्यवहार दयामय था, जो विशेष रूप से उस तरीके के व्यवहार के विपरीत था, जैसा पहले ईसाइयों ने मुसलमानों और यहूदियों के साथ किया था। हालांकि उसने द चर्च ऑफ दि होली सेपलकर की अभिरक्षा का काम ईसाइयों को सौंप दिया था, लेकिन बहुत–से गिरजाघरों को मस्जिदों में बदल दिया गया, और जेरूसलम एक बार फिर मुस्लिम शहर बन गया।

इस शहर के छिन जाने से, 1189 में तीसरे धर्मयुद्ध के लिए प्रोत्साहन मिला, लेकिन धर्मयुद्ध करने वाले फिलिस्तीन में कुछ तटवर्ती शहरों और ईसाई तीर्थयात्रियों के लिए जेरूसलम में मुक्त रूप से प्रवेश के सिवाय और कुछ प्राप्त नहीं कर सके। मिस्र के शासकों, मामलुकों ने अंततः 1291 में धर्मयुद्ध करने वाले सभी ईसाइयों को समूचे फिलिस्तीन से बाहर निकाल दिया। धीरे–धीरे यूरोप की इस्लाम में सैनिक दिलचस्पी समाप्त हो गई और उसका ध्यान अपने आंतरिक राजनीतिक और सांस्कृतिक विकास की ओर केंद्रित हो गया।

इन धर्मयुद्धों ने ईसाई–मुस्लिम संबंधों के दो पहलुओं पर स्थायी प्रभाव छोड़ा। इनमें से एक था, मुस्लिम राज्यों का अपने ईसाई प्रजाजनों की ओर कठोर रुख, जो लड़ाइयों की कड़वी यादों और मिली–जुली आबादी वाले इलाकों में सुरक्षा की ज़रूरतों का परिणाम था। दूसरा था, मुस्लिम सत्ता की बहाली के बाद भी पूर्व और पश्चिम के बीच व्यापार में इटली के व्यापारिक समुदायों (पीसा, जेनोआ और वैनिस का अधिक प्रभाव।)

© NCERT not to be republished

सीरिया में फ्रैंक

अपने अधीन किए गए मुस्लिम लोगों के साथ विभिन्न फ्रैंक (पश्चिमी देशों के नागरिक जो धर्मयुद्धों में विजयी हुए) अभिजातों का व्यवहार भिन्न-भिन्न प्रकार का था। शुरू के धर्मयुद्धकारी, जो सीरिया और फिलिस्तीन में बस गए थे, बाद में आने वालों की तुलना में, आमतौर पर मुस्लिम आबादी के प्रति अधिक सहिष्णु थे। बारहवीं शताब्दी के एक सीरियाई मुसलमान उसामा इब्न मुनकिथ (Usama ibn Munqidh) ने अपने संस्मरणों में अपने नए पड़ोसियों के बारे में कुछ दिलचस्प बातें कही हैं:

'फ्रैंक लोगों में कुछ लोग ऐसे हैं, जो इस देश में बस गए हैं और मुसलमानों के साथ जुड़े हुए हैं। वे नए आने वालों से बेहतर हैं, लेकिन वे नियम का अपवाद हैं और उनके आधार पर कोई निष्कर्ष नहीं निकाला जा सकता।

सीरिया में स्थित धर्मयोद्धाओं का एक दुर्ग। इसका निर्माण धर्मयुद्ध के दौरान हुआ। अरब नियंत्रित क्षेत्रों पर आक्रमण करने के लिए यह एक महत्त्वपूर्ण आधार था। इसकी मीनारों और जलवाही सेतुओं का निर्माण बेबार नामक मामलुक सुलतान ने 1271 में करवाया।

एक उदाहरण यह है कि एक बार मैंने किसी आदमी को व्यापार के लिए एंटीओक भेजा। उस समय, चीफ थिओडोर सोफिआनोस (Chief Theodore Sophianos, एक पूर्वी ईसाई) वहाँ पर था, वह और मैं आपस में दोस्त थे। वह तब एंटीओक में हर तरह से शक्तिशाली था। एक दिन उसने मेरे आदमी से कहा "मेरे एक फ्रैंक मित्र ने मुझे आमंत्रित किया है। मेरे साथ चलो और देखो कि वे लोग किस प्रकार रहते हैं।" मेरे आदमी ने मुझे बताया, इसलिए मैं उसके साथ चला गया, और हम उन पुराने शूरवीरों में से एक शूरवीर (नाइट) के घर पहुँच गए, जो प्रथम फ्रैंक अभियान के साथ आए थे। वह अब राज्य और सेना से सेवानिवृत्त हो चुका था, और उसके पास एंटीओक में सम्पत्ति थी, जहाँ वह रहता था। उसने बहुत ही सफाई से स्वादिष्ट भोजन परोसा था।

उसने देखा कि मैं खाने में संकोच कर रहा हूँ, और तब उसने कहा, "जी भरकर खाना खाओ, क्योंकि मैं फ्रैंक खाना नहीं खाता। मेरे पास मिस्री महिलाएँ हैं जो मेरा खाना बनाती हैं और वे जो कुछ तैयार करती हैं उसके अलावा मैं और कुछ नहीं खाता। न कभी सूअर के मांस का मेरे घर के अंदर प्रवेश होता है।" इसलिए मैंने खाना खाया, लेकिन कुछ सावधानी के साथ, और तब हम वहाँ से रवाना हुए। बाद में, मैं बाज़ार से गुज़र रहा था, तब अचानक एक फ्रैंक महिला ने मुझे पकड़ लिया और अपनी भाषा में बड़बड़ाना शुरू कर दिया। मैं यह समझ नहीं पाया कि वह क्या कह रही है। फ्रैंक लोगों की भीड़ मेरे आस-पास इकट्ठी हो गई। मुझे यकीन हो गया कि मेरा अंत निकट आ गया है। तब, अचानक वही शूरवीर वहाँ आ गया और उसने उस औरत से पूछा, "तुम इस मुसलमान से क्या चाहती हो?" उसने उत्तर दिया, "इसने मेरे भाई हुरसो की हत्या की थी।" यह हुरसो अफ़ामिया का एक शूरवीर था, जिसकी हत्या हामा की सेना के किसी सिपाही द्वारा कर दी गई थी। तब उस शूरवीर ने चिल्लाकर उस महिला से कहा, "यह व्यक्ति मध्यवर्गी (बुर्जुआ) है, अर्थात् यह एक व्यापारी है। यह लड़ता-लड़ाता नहीं है। किसी भी किस्म का युद्ध नहीं करता।" वह भीड़ पर भी चिल्लाया और तब भीड़ तितर-बितर हो गई; तब उसने मेरा हाथ पकड़ा और मुझे वहाँ से ले गया। इस प्रकार उसके साथ भोजन करने का यह प्रभाव था कि उसने मुझे मृत्यु से बचा लिया।"

– किताब अल-इतिबार

© NCERT not to be republished

अर्थव्यवस्था–कृषि, शहरीकरण और वाणिज्य

नए जीते गए क्षेत्रों में बसे हुए लोगों का प्रमुख व्यवसाय कृषि था। इस्लामी राज्य ने इसमें कोई परिवर्तन नहीं किया। ज़मीन के मालिक बड़े और छोटे किसान थे और, कहीं-कहीं राज्य था। इराक़ और ईरान में, ज़मीन काफी बड़ी इकाइयों में बँटी हुई थी, जिसकी खेती किसानों द्वारा की जाती थी। ससानी और इस्लामी कालों में संपदा स्वामी राज्य की ओर से कर एकत्र करते थे। उन इलाकों में, जो पशुचारण की स्थिति से आगे बढ़कर स्थिर कृषि व्यवस्था तक पहुँच गए थे, ज़मीन गाँव की सांझी सम्पत्ति थी। अंत में, जो भूमि-सम्पत्तियाँ इस्लामी विजय के बाद मालिकों द्वारा छोड़ दी गई थीं, वे राज्य द्वारा अपने हाथ में ले ली गई थीं और साम्राज्य के विशिष्ट वर्ग के मुसलमानों को दे दी गई थीं, विशेष रूप से खलीफ़ा के परिवार के सदस्यों को।

कृषि भूमि का सर्वोपरि नियंत्रण राज्य के हाथों में था, जो विजय का काम पूरा होने पर अपनी अधिकांश आय भू-राजस्व से प्राप्त करता था। अरबों द्वारा जीती गई भूमि पर, जो मालिकों के हाथों में रहती थी, कर *(खराज)* लगता था, जो खेती की स्थिति के अनुसार पैदावार के आधे से लेकर उसके पांचवें हिस्से के बराबर होता था। जो ज़मीन मुसलमानों की मिलकियत थी अथवा जिसमें उनके द्वारा खेती की जाती थी, उस पर उपज के दसवें हिस्से के बराबर कर लगता था। जब ग़ैर-मुसलमान कम कर देने के उद्देश्य से मुसलमान बनने लगे तो उससे राज्य की आय कम हो गई। इस कमी को पूरा करने के लिए, खलीफ़ाओं ने पहले तो धर्मांतरण को निरुत्साहित किया और बाद में कराधान की एकसमान नीति अपनाई। 10वीं शताब्दी से राज्य ने अधिकारियों को अपना वेतन भूमियों के कृषि राजस्व से, जिसे *इक्ता* (राजस्व का हिस्सा) कहा जाता था, लेने के लिए प्राधिकृत किया।

फसल की कटाई; मज़दूरों का खाना एक ट्रे पर लाया जा रहा है।

सूडो गैलन की प्रत्यौषधों की पुस्तक (Book of Antidotes) का अरबी रूपांतर, 1199 (डा. गैलन की कहानी देखिये पृ. 63)।

खेती में खुशहाली राजनीतिक स्थिरता साथ-साथ आई। बहुत-से क्षेत्रों में, विशेष रूप से नील घाटी में, राज्य ने सिंचाई प्रणालियों, बाँधों और नहरों के निर्माण, कुओं की खुदाई (जिनमें आमतौर पर पनचक्कियाँ अथवा *नोरिया* लगी होती थीं) के लिए सहायता दी, ये सारी चीज़ें अच्छी फ़सल के लिए ज़रूरी थीं। इस्लामी कानून में उन लोगों को कर में रियायत दी गई, जो ज़मीन को पहली बार खेती के काम में लाते थे। किसानों की पहल और राज्य के समर्थन के ज़रिए खेती-योग्य भूमि का विस्तार हुआ और प्रमुख प्रौद्योगिकीय परिवर्तनों के अभाव की स्थिति में भी उत्पादकता में वृद्धि हुई। बहुत-सी नयी फ़सलों; जैसे – कपास, संतरा, केला, तरबूज़, पालक और बैंगन की खेती की गई और यूरोप को उनका निर्यात भी किया गया।

जैसे-जैसे शहरों की संख्या में तेज़ी से बढ़ोतरी हुई, वैसे ही इस्लामी सभ्यता फली-फूली। बहुत-से नए शहरों की स्थापना की गई, जिनका उद्देश्य मुख्य रूप से अरब सैनिकों *(जुंड)* को बसाना था, जो स्थानीय प्रशासन की रीढ़ थे। इस श्रेणी के फौजी शहरों में, जिन्हें *मिस्र* कहा जाता था (इजिप्ट का अरबी नाम), कुफा और बसरा इराक़ में, और फुस्तात तथा काहिरा मिस्र में थे।

© NCERT not to be republished

अब्बासी खिलाफत (800) की राजधानी के रूप में अपनी स्थापना के बाद आधी शताब्दी के अंदर बग़दाद की जनसंख्या बढ़ कर लगभग दस लाख तक पहुँच गई थी। इन शहरों के साथ-साथ दमिश्क, इस्फ़हान और समरकंद जैसे कुछ पुराने शहर थे, जिन्हें नया जीवन मिल गया था। खाद्यान्नों और शहरी विनिर्माताओं के लिए कच्ची सामग्री, जैसे कपास और चीनी के उत्पादन में वृद्धि की गई जिससे इन शहरों के आकार और इनकी जनसंख्या में बढ़ोतरी हुई। इस प्रकार संपूर्ण क्षेत्र में शहरों का एक विशाल जाल विकसित हो गया। एक शहर दूसरे शहर से जुड़ गया और परस्पर संपर्क एव कारोबार बढ़ गया।

शहर के केंद्र में दो भवन-समूह होते थे, जहाँ से सांस्कृतिक और आर्थिक शक्ति का प्रसारण होता था : उनमें एक मस्जिद *(मस्जिद अल-जामी)* होती थी जहाँ सामूहिक नमाज़ पढ़ी जाती थी। यह इतनी बड़ी होती थी कि दूर से दिखाई दे सकती थी। दूसरा भवन-समूह केंद्रीय मंडी *(सुक़)* था, जिसमें दुकानों की कतारें होती थीं, व्यापारियों के आवास *(फ़ंदुक़)* और सर्राफ़ का कार्यालय होता था। शहर प्रशासकों (जो राज्य के *आयन* अथवा नेत्र थे) और विद्वानों और व्यापारियों *(तुज्जर)* के लिए घर होते थे, जो केंद्र के निकट रहते थे। सामान्य नागरिकों और सैनिकों के रहने के क्वार्टर बाहरी घेरे में होते थे, और प्रत्येक में अपनी मस्जिद, गिरजाघर अथवा सिनेगोग (यहूदी प्रार्थनाघर), छोटी मंडी और सार्वजनिक स्नानघर *(हमाम)* और एक महत्त्वपूर्ण सभा-स्थल होता था। शहर के बाहरी इलाकों में शहरी गरीबों के मकान, देहातों से लाई जाने वाली हरी सब्ज़ियों और फलों के लिए बाज़ार, काफिलों के ठिकाने और 'अस्वच्छ' दुकानें, जैसे चमड़ा साफ करने या रँगने की दुकानें और कसाई की दुकानें होती थीं। शहर की दीवारों के बाहर कब्रिस्तान और सराय होते थे। सराय में लोग उस समय आराम कर सकते थे जब शहर के दरवाज़े बंद कर दिए गए हों। सभी शहरों का नक्शा एक जैसा नहीं होता था, इस नक्शे में परिदृश्य, राजनीतिक परंपराओं और ऐतिहासिक घटनाओं के आधार पर परिवर्तन किए जा सकते थे।

बसरा को जाने वाली एक नाव। नाविक भारतीय है और यात्री अरबी हैं। आधुनिक काल से पहले जलमार्ग द्वारा माल और यात्रियों की ढुलाई सस्ती, तेज़ और सुरक्षित थी। ये चित्र हरिरी द्वारा रचित 12वीं शताब्दी की एक पांडुलिपि मकामात *से लिया गया।* मकामात *(सभाएँ) एक लोकप्रिय अरबी साहित्य की विधा थी, जिसमें वाचक एक चालबाज़ और उसकी शरारतों की कहानियाँ सुनाता है।*

राजनीतिक एकीकरण और खाद्य पदार्थों और विलास-वस्तुओं की शहरी माँग ने विनिमय के दायरे का विस्तार कर दिया। भूगोल ने मुस्लिम साम्राज्य की सहायता की, जो हिंद महासागर और भूमध्यसागर के व्यापारिक क्षेत्रों के बीच फैल गया। पाँच शताब्दियों तक, अरब और ईरानी व्यापारियों का चीन, भारत और यूरोप के बीच के समुद्री व्यापार पर एकाधिकार रहा। यह व्यापार दो मुख्य रास्तों यानी लाल सागर और फारस की खाड़ी से होता था। लंबी दूरी के व्यापार के लिए उपयुक्त और उच्च मूल्य वाली वस्तुओं; जैसे – मसालों, कपड़ों, चीनी मिट्टी की चीज़ों और बारूद को भारत और चीन से लाल सागर के पत्तनों अर्थात् अदन और ऐधाब तक और फारस खाड़ी के पत्तन सिराफ और बसरा तक ज़हाज पर लाया जाता था। यहाँ से, माल को ज़मीन पर ऊँटों के काफिलों के द्वारा बग़दाद, दमिश्क और एलेप्पो के भंडारगृहों (*मखाज़िन* जो फ्रांसीसी शब्द मैगज़ीन का मूल है, जिसका अर्थ है दुकान) तक स्थानीय खपत के लिए अथवा आगे भेजने के लिए ले

© NCERT not to be republished

जाया जाता था। मक्का के रास्ते से गुज़रने वाले काफिले बड़े हो जाते थे, जब *हज* की यात्रा का समय हिंद महासागर में नौ-चालन के मौसम (*मवासिम*, जो मानसून शब्द का मूल है) के साथ पड़ता था। इन व्यापारिक मार्गों के भूमध्यसागर के सिरे पर सिकंदरिया के पत्तन से यूरोप को किए जाने वाले निर्यात को यहूदी व्यापारियों द्वारा संभाला जाता था, जिनमें से कुछ भारत से सीधे व्यापार करते थे, जैसाकि गेनिज़ा (Geniza) संग्रह में परिरक्षित उनके पत्रों से देखा जा सकता है। किंतु, चौथी शताब्दी से, व्यापार और शक्ति के केंद्र के रूप में काहिरा के उभर आने के कारण और इटली के व्यापारिक शहरों से पूर्वी माल की बढ़ती हुई माँग के कारण लाल सागर के मार्ग ने अधिक महत्त्व प्राप्त कर लिया।

पूर्वी सिरे की चर्चा करें तो ईरानी व्यापारी मध्य एशियाई और चीनी वस्तुएँ, जिनमें कागज़ भी शामिल था, लाने के लिए बग़दाद से बुखारा और समरकंद (*तुरान*) होते हुए रेशम मार्ग से चीन

क्रियाकलाप 2

बसरा में सुबह के एक दृश्य का वर्णन करो।

कागज़, गेनिज़ा अभिलेख और इतिहास

कागज़ के आविष्कार के बाद इस्लामी जगत में लिखित रचनाओं का व्यापक रूप से प्रसार होने लगा। कागज़ (लिनन से निर्मित) चीन से आया था, जहाँ कागज़ बनाने की प्रक्रिया को बहुत सावधानी से गुप्त रखा गया था। 751 में, समरकंद के मुसलमान प्रशासक ने 20,000 चीनी आक्रमणकारियों को बंदी बना लिया, जिनमें से कुछ कागज़ बनाने में बहुत निपुण थे। अगले सौ वर्षों के लिए, समरकंद का कागज़ निर्यात की एक महत्त्वपूर्ण वस्तु बन गया। चूंकि इस्लाम एकाधिकार का निषेध करता है, इसलिए कागज़ इस्लामी दुनिया के बाकी हिस्सों में बनाया जाने लगा। दसवीं शताब्दी के मध्य भाग तक इसने अधिकांशतः पैपाइरस का स्थान ले लिया था। पैपाइरस एक ऐसी लेखन सामग्री था, जिसे एक ऐसे पौधे के अंदरूनी तने से बनाया जाता था, जो नील घाटी में बहुतायत से उगता था। कागज़ की माँग बढ़ गई, और अब्द अल-लतीफ, (Abd al-Latif) जो बग़दाद से आया हुआ एक चिकित्सक था (आदर्श विद्यार्थी का चित्रण पृष्ठ 98 पर देखिए) और 1193 से 1207 तक मिस्र का निवासी था, लिखता है कि मिस्र के किसानों ने ममियों के ऊपर लपेटे गए लिनन से बने हुए आवरण प्राप्त करने के लिए कब्रों को किस तरह लूटा था, ताकि वे इन लिनन आवरणों को कागज़ के कारखानों को बेच सकें।

कागज़ की उपलब्धता के कारण सभी प्रकार के वाणिज्यिक और निजी दस्तावेज़ों को लिखना भी सुविधाजनक हो गया। 1896 में फुस्तात (पुराना काहिरा) में बेन एज़रा के यहूदी प्रार्थना-भवन के एक सीलबंद कमरे (*गेनिज़ा*, जिसका उच्चारण *ग़निज़ा* के रूप में किया जाता है) में मध्यकाल के यहूदी दस्तावेज़ों का एक विशाल संग्रह मिला। ये दस्तावेज़ इस यहूदी प्रथा के कारण सँभाल कर रखे गए थे कि ऐसी किसी भी लिखावट को नष्ट नहीं किया जाना चाहिए, जिसमें परमेश्वर का नाम लिखा हुआ हो। गेनिज़ा में लगभग ढाई लाख पांडुलिपियाँ और उनके टुकड़े थे, जिनमें कई आठवीं शताब्दी के मध्यकाल की भी थीं। अधिकांश सामग्री दसवीं से तेरहवीं शताब्दी तक की थी, अर्थात् फातिमी, अयूबी, और प्रारंभिक मामलुक काल की थीं। इनमें व्यापारियों, परिवार के सदस्यों और दोस्तों के बीच लिखे गए पत्र, संविदा, दहेज से जुड़े वादे, बिक्री दस्तावेज़, धुलाई के कपड़ों की सूचियाँ और अन्य मामूली चीज़ें शामिल थीं। अधिकतर दस्तावेज़ यहूदी-अरबी भाषा में लिखे गए थे, जो हिब्रू अक्षरों में लिखी जाने वाली अरबी भाषा का ही रूप था, जिसका उपयोग समूचे मध्यकालीन भूमध्य सागरीय क्षेत्र में यहूदी समुदायों द्वारा आमतौर पर किया जाता था। गेनिज़ा दस्तावेज़ निजी और आर्थिक अनुभवों से भरे हुए हैं और वे भूमध्यसागरीय और इस्लामी संस्कृति की अंदरूनी जानकारी प्रस्तुत करते हैं। इन दस्तावेज़ों से यह भी पता चलता है कि मध्यकालीन इस्लामी जगत के व्यापारियों के व्यापारिक कौशल और वाणिज्यिक तकनीकें उनके यूरोपीय प्रतिपक्षियों की तुलना में बहुत अधिक उन्नत थीं। गेटिन ने गेनिज़ा अभिलेखों का प्रयोग करते हुए भूमध्यसागर का इतिहास कई संग्रहों में लिखा। गेनिज़ा के एक पत्र से प्रेरित होकर अमिताभ घोष ने अपनी पुस्तक *इन एन एंटीक लैंड* में एक भारतीय दास की कहानी प्रस्तुत की है।

© NCERT not to be republished

जाते थे। तुरान भी वाणिज्यिक तंत्र में एक महत्त्वपूर्ण कड़ी था। यह तंत्र यूरोपीय वस्तुओं, मुख्यत: फर और स्लाव गुलामों (इसी से अंग्रेज़ी *'स्लेव'* शब्द बना) के व्यापार के लिए उत्तर में रूस और स्कैंडीनेविया तक फैला हुआ था। इन वस्तुओं की अदायगी के लिए इस्तेमाल किए जाने वाले इस्लामी सिक्के वोल्गा नदी के आसपास और बाल्टिक क्षेत्र में बड़ी संख्या में पाए गए हैं। इन बाज़ारों में तुर्क गुलाम (दास-दासियाँ) भी खलीफ़ाओं और सुलतानों के दरबारों के लिए खरीदे जाते थे।

राजकोषीय प्रणाली (राज्य की आय और उसका व्यय) और बाज़ार के लेन-देन ने इस्लामी देशों में धन के महत्त्व को बढ़ा दिया था। सोने, चाँदी और ताँबे *(फ़ुलस)* के सिक्के बनाए जाते थे और वस्तुओं और सेवाओं की अदायगी के लिए प्राय: सर्राफ़ों द्वारा सीलबंद किए गए थैलों में भेजे जाते थे। सोना अफ़्रीका (सूदान) से और चाँदी मध्य एशिया (ज़रफशन घाटी) से आती थी। कीमती धातुएँ और सिक्के यूरोप से भी आते थे, जो पूर्वी व्यापार की वस्तुओं को खरीदने के लिए यूरोप अदा करता था। धन की बढ़ती हुई माँग ने लोगों को अपने संचित भंडारों और बेकार पड़ी सम्पत्ति का उपयोग करने के लिए विवश कर दिया। उधार का कारोबार भी मुद्राओं के साथ जुड़ गया जिससे वाणिज्य गतिशील हो गया। मध्यकालीन आर्थिक जीवन में मुस्लिम जगत का सबसे बड़ा योगदान यह था कि उन्होंने अदायगी और व्यापार व्यवस्था के बढ़िया तरीकों को विकसित किया। साख-पत्रों (*सक्क*, जो अंग्रेज़ी शब्द चैक व हिंदी शब्द साख का मूल है) और हुंडियों (बिल ऑफ एक्सचेंज-*'सुफतजा'*) का उपयोग व्यापारियों, साहूकारों द्वारा धन को एक जगह से दूसरी जगह और एक व्यक्ति से दूसरे व्यक्ति को अंतरित करने के लिए किया जाता था। वाणिज्यिक पत्रों के व्यापक उपयोग से व्यापारियों को हर स्थान पर नकद मुद्रा अपने साथ ले जाने से मुक्ति मिल गई और इससे उनकी यात्राएँ भी ज़्यादा सुरक्षित हो गईं। खलीफ़ा भी वेतन अदा करने अथवा कवियों और चारणों को इनाम देने के लिए *सक्क* का इस्तेमाल करते थे।

यद्यपि व्यापारियों के लिए पारिवारिक व्यापार स्थापित करना अथवा अपने कार्यों के संचालन के लिए गुलामों को काम में लगाना एक आम रिवाज था, लेकिन *मुज़र्बा* जैसे औपचारिक व्यापारिक प्रबंध आमतौर पर किए जाते थे, जिनमें निष्क्रिय साझेदार अपनी पूँजी कारोबार के कामों में देश-विदेश पर जाने वाले सक्रिय सौदागरों को सौंप देते थे। लाभ व हानि को किए गए निर्णयों के अनुसार बाँट लिया जाता था। इस्लाम लोगों को धन कमाने से नहीं रोकता था, बशर्ते कि कुछ निषेध संबंधी नियमों का पालन किया जाए। उदाहरण के लिए, ब्याज लेन-देन *(रिबा)* गैर-कानूनी थे, हालांकि लोग बड़े चतुराईपूर्ण तरीकों *(हियाल)* से सूदखोरी करते थे, जैसे किसी खास किस्म के सिक्कों में उधार लेना और एक अन्य किस्म के सिक्कों से अदायगी करना और मुद्रा-विनिमय (हुंडी का मूल) पर कमीशन के रूप में छिपे तौर पर ब्याज खा लेना।

एक हज़ार एक रातें (अलिफ लैला व लैला) की कई कहानियों में हमें मध्यकालीन मुस्लिम समाज की तस्वीर मिलती है। इन कहानियों में नाविकों, गुलामों, सौदागरों और सर्राफों जैसे कई पात्रों का वर्णन है।

© NCERT not to be republished

विद्या और संस्कृति

जब अन्य लोगों के साथ संपर्क में आने पर मुसलमानों के धार्मिक और सामाजिक अनुभवों में गहराई आई, तो मुस्लिम समुदाय को अपने ऊपर सोच-विचार करना पड़ा और ईश्वर *(अल्लाह)* और संसार से जुड़े मुद्दों से भी जूझना पड़ा। एक मुसलमान का आदर्श आचरण सबके सामने और अकेले में कैसा होना चाहिए? सृष्टि रचना का क्या उद्देश्य है और कोई व्यक्ति यह कैसे जान सकता है कि ईश्वर उसके द्वारा पैदा किए जीवों से क्या चाहता है? कोई सृष्टि के रहस्यों को कैसे समझ सकता है? इन प्रश्नों के उत्तर विद्वान मुसलमानों से प्राप्त हुए, जिन्होंने समुदाय की सामाजिक पहचान को मज़बूत बनाने के लिए और अपनी बौद्धिक जिज्ञासा को संतुष्ट करने के लिए विभिन्न प्रकार का ज्ञान प्राप्त और संकलित किया।

धार्मिक विद्वानों *(उलमा)* के लिए क़ुरान से प्राप्त ज्ञान *(इल्म)* और पैगम्बर का आदर्श व्यवहार *(सुन्ना)* ईश्वर की इच्छा को जानने का एकमात्र तरीक़ा है और वह इस विश्व में मार्गदर्शन प्रदान करता है। मध्यकाल में उलमा अपना समय क़ुरान पर टीका *(तफ़सीर)* लिखने और मुहम्मद की प्रामाणिक उक्तियों और कार्यों को लेखबद्ध *(हदीथ)* करने में लगाते थे। कुछ उलमा ने कर्मकांडों *(इबादत)* के ज़रिए ईश्वर के साथ मुसलमानों के संबंध को नियंत्रित करने और सामाजिक कार्यों *(मुआमलात)* के ज़रिए बाकी इनसानों के साथ मुसलमानों के संबंधों को नियंत्रित करने के लिए कानून अथवा *शरीआ* (जिसका शाब्दिक अर्थ है सीधा रास्ता) तैयार करने का काम किया। इस्लामी कानून तैयार करने के लिए, विधिवेत्ताओं ने तर्क और अनुमान *(क़ियास)* का इस्तेमाल भी किया, क्योंकि क़ुरान और *हदीथ* में हर चीज़ प्रत्यक्ष नहीं थी और शहरीकरण के कारण जीवन उत्तरोत्तर जटिल बन गया था। स्रोतों के अर्थ-निर्णय और विधिशास्त्र के तरीकों के बारे में मतभेदों के कारण आठवीं और नौवीं शताब्दी में कानून की चार शाखाएँ (मज़हब) बन गईं। ये मलिकी, हनफी, शफ़ीई और हनबली थीं, जिनमें से प्रत्येक का नाम एक प्रमुख विधि वेत्ता *(फक़ीह)* के नाम पर रखा गया था, और इनमें से अंतिम शाखा सर्वाधिक रूढ़िवादी थी। *शरीआ* ने सुन्नी समाज के भीतर सभी संभव कानूनी मुद्दों के बारे में मार्गदर्शन प्रदान किया था, हालांकि यह वाणिज्यिक अथवा दाण्डिक और संवैधानिक मुद्दों की अपेक्षा वैयक्तिक स्थिति (विवाह, तलाक और विरासत) के प्रश्नों के बारे में अधिक सुस्पष्ट था।

1233 में स्थापित मुस्तनसिरिया मदरसे का आँगन। मकतब में अपनी स्कूली शिक्षा पूरी कर चुके विद्यार्थियों के लिए यह मदरसा 'महाविद्यालय' था। मदरसे मस्जिदों से जुड़े होते थे लेकिन बड़े मदरसों की अपनी मस्जिद होती थी।

© NCERT not to be republished

क़ुरान शरीफ़

"यदि संसार के सभी पेड़ कलम होते और समुद्र स्याही होते
और इस तरह सात समुद्र स्याही की पूर्ति करने के लिए होते,
तो भी लिखते-लिखते अल्लाह के शब्द समाप्त न होते।"

(क़ुरान, अध्याय 31, पद 27)

नौवीं शताब्दी में चर्मपत्र पर लिखे क़ुरान का एक पृष्ठ। यह सूरा 18 'अल-काफ़' (गुफा) की शुरुआत है। इसमें मूसा, एफीसस एवं सिकंदर के सात सोने वालों (ज़ुल्कर नैन) का उल्लेख करता है। इस कोणीय कूफ़ी लिपि में ध्वनियों को लाल चिह्न से दिखाया गया है ताकि उच्चारण में मदद मिले।

अरबी भाषा में रचित क़ुरान 114 अध्यायों *(सूराओं)* में विभाजित है, जिनकी लंबाई क्रमिक रूप से घटती जाती है। इस प्रकार आखिरी सूरा सबसे छोटा है। इसका अपवाद केवल पहला सूरा है, जो एक संक्षिप्त प्रार्थना (*अल-फतिहा* अथवा प्रारंभ) है। मुस्लिम परंपरा के अनुसार, क़ुरान उन संदेशों (रहस्योद्‌घाटन) का संग्रह है, जो खुदा ने पैगम्बर मुहम्मद को 610 और 632 के बीच की अवधि में पहले मक्का में और फिर मदीना में दिए थे। इन रहस्योद्‌घाटनों को संकलित करने का कार्य किसी समय 650 में पूरा किया गया था। आज जो सबसे प्राचीन संपूर्ण क़ुरान हमारे पास है, वह नौवीं शताब्दी का है। ऐसे बहुत से खंड हैं, जो इससे पुराने हैं; जो सबसे पहले के हैं, वे हैं चट्टान के गुंबद और सातवीं शताब्दी के सिक्कों पर उत्कीर्ण पद।

प्रारंभिक इस्लाम के इतिहास के लिए स्रोत सामग्री के रूप में क़ुरान के उपयोग ने कुछ समस्याएँ प्रस्तुत की हैं। पहली यह कि यह एक धर्मग्रंथ है, एक ऐसा मूल-पाठ है, जिसमें धार्मिक सत्ता निहित है। मुसलमानों का आमतौर पर यह विश्वास है कि खुदा की वाणी *(कलाम अल्लाह)* होने के कारण इसे शब्दश: समझा जाना चाहिए, हालाँकि बुद्धिवादी धर्मविज्ञानी अधिक उदार थे और उन्होंने क़ुरान की व्याख्या अधिक उदारता से की। 833 में, अब्बासी खलीफ़ा, अल-मामून ने यह मत लागू किया (विश्वास अथवा *मिहना* के मुकद्दमे में) कि क़ुरान खुदा की वाणी की बजाय उसकी रचना है। दूसरी समस्या यह है कि क़ुरान प्राय: रूपकों में बात करता है और, ओल्ड टेस्टामेंट *(तवरित)* के विपरीत, यह घटनाओं का वर्णन नहीं करता, बल्कि केवल उनका उल्लेख करता है। इसलिए, मध्यकालीन मुस्लिम विद्वानों को पैगम्बर मुहम्मद के वचनों के अभिलेखों *(हदीथ)* की सहायता से टीकाओं की रचना करनी पड़ी थी। क़ुरान को पढ़ने-समझने के लिए कई *हदीथ* लिखे गए।

© NCERT not to be republished

अंतिम रूप लेने से पहले, शरीआ को विभिन्न क्षेत्रों के रीति–रिवाज़ों पर आधारित कानूनों *(उर्फ़)* और राजनीतिक तथा सामाजिक व्यवस्था के बारे में राज्य के कानूनों *(सियासा शरीआ)* को ध्यान में रखते हुए समायोजित किया गया था। लेकिन देहातों के बहुत बड़े भागों में रीति–रिवाज़ों पर आधारित कानूनों ने अपनी ताकत बरकरार रखी और ज़मीन में बेटियों के उत्तराधिकार जैसे मामलों में शरीआ के पालन से बचते रहे। अधिकतर शासनों में, शासक और उसके अधिकारी राज्य की सुरक्षा के मामलों को नियमित रूप से निपटाते थे और केवल कुछ ही चुने हुए मामले *काज़ी* (न्यायाधीश) के पास भेजते थे। राज्य द्वारा प्रत्येक शहर अथवा बस्ती में नियुक्त किया गया काज़ी अक्सर *शरीआ* का कड़ाई से पालन कराने की बजाय विवाद के सम्मत हल पर पहुँच कर एक मध्यस्थ के रूप में कार्य करता था।

मध्यकालीन इस्लाम के धार्मिक विचारों वाले लोगों का एक समूह बन गया था जिन्हें सूफ़ी कहा जाता है। ये लोग तपश्चर्या *(रहबनिया)* और रहस्यवाद के ज़रिए खुदा का अधिक गहरा और अधिक वैयक्तिक ज्ञान प्राप्त करना चाहते थे। समाज जितना अधिक भौतिक पदार्थों और सुखों की ओर लालायित होता था, सूफ़ी लोग संसार का त्याग *(ज़ुहद)* उतना अधिक करना चाहते थे और केवल खुदा पर भरोसा *(तवक्कुल)* करना चाहते थे। आठवीं और नौवीं शताब्दी में तपश्चर्या एवं वैराग्य की प्रवृत्तियाँ सर्वेश्वरवाद और प्यार के विचारों द्वारा ऊँचा उठकर रहस्यवाद *(तसव्वुफ़)* की ऊँची अवस्था पर पहुँच गईं। सर्वेश्वरवाद ईश्वर और उसकी सृष्टि के एक होने का विचार है, जिसका अभिप्राय यह है कि मनुष्य की आत्मा को उसके निर्माता यानी परमात्मा के साथ मिलाना चाहिए। ईश्वर से मिलन, ईश्वर के साथ तीव्र प्रेम *(इश्क़)* के ज़रिए ही प्राप्त किया जा सकता है। इस इश्क़ का उपदेश एक महिला संत, बसरा की राबिया (मृत्यु 891 में) द्वारा अपनी शायरी में दिया गया था। बयाज़िद बिस्तामी (मृत्यु 875 में), जो एक ईरानी सूफ़ी था, पहला व्यक्ति था, जिसने अपने आपको खुदा में लीन *(फ़ना)* करने का उपदेश दिया था। सूफ़ी आनंद उत्पन्न करने और प्रेम तथा भावावेश उदीप्त करने के लिए संगीत समारोहों *(समा)* का उपयोग करते थे।

तेज़ी से नाचते हुए दरवेशों का चित्र, ईरानी पांडुलिपि, 1490। नाचने वाले चार पुरुषों में से एक ही के हाथ सही स्थिति में दिखाए गए हैं। इनमें कुछ चक्कर खाकर गिर गए हैं। उन्हें उठाकर ले जाया जा रहा है।

सूफ़ीवाद का द्वार सबके लिए खुला है, चाहे वह किसी भी धर्म, हैसियत अथवा लिंग का हो। धुलनुन मिस्री (मृत्यु 861 में), जिसकी कब्र आज भी मिस्र में पिरामिडों के निकट देखी जा सकती है, ने अब्बासी खलीफ़ा, अल–मुतवक्किल के सामने यह घोषणा की थी कि 'उसने सच्चा इस्लाम एक बूढ़ी महिला से, और सच्ची वीरता एक जल–वाहक से सीखी है।' सूफ़ीवाद ने इस्लाम को निजी अधिक, और संस्थात्मक कम बना दिया और इस प्रकार उसने लोकप्रियता प्राप्त की और रूढ़िवादी इस्लाम के समक्ष चुनौती पेश की।

इस्लामी दार्शनिकों और वैज्ञानिकों ने यूनानी दर्शन और विज्ञान के प्रभाव में ईश्वर और विश्व की एक वैकल्पिक कल्पना विकसित की। सातवीं शताब्दी के दौरान, बाइज़ेंटाइन

© NCERT not to be republished

और ससानी साम्राज्यों में पिछली यूनानी संस्कृति के अवशेष पाए जा सकते थे, हालांकि, वे धीरे-धीरे समाप्त हो रहे थे। सिकंदरिया, सीरिया और मेसोपोटामिया के स्कूलों में, जो कभी सिकन्दर के साम्राज्य के भाग थे, अन्य विषयों के साथ-साथ यूनानी दर्शन, गणित और चिकित्सा की शिक्षा दी जाती थी। उमय्यद और अब्बासी खलीफ़ाओं ने ईसाई विद्वानों से यूनानी और सीरियाक भाषा की किताबों का अनुवाद कराया। अल-मामून के शासन में अनुवाद एक सुनियोजित क्रियाकलाप बन गया था। उसने बग़दाद में पुस्तकालय-व-विज्ञान संस्थान *(बायत अल-हिक्मा)* को, जहाँ विद्वान काम करते थे, सहायता दी थी। अरस्तु की कृतियों, यूक्लिड की *एलीमेंट्स* और टोलेमी की पुस्तक *एल्मागेस्ट* की ओर अरबी पढ़ने वाले विद्वानों का ध्यान दिलाया गया। खगोल विज्ञान, गणित और चिकित्सा के बारे में भारतीय पुस्तकों का अनुवाद भी इसी काल में अरबी में किया गया। ये रचनाएँ यूरोप में पहुँची और इनसे दर्शन-शास्त्र और विज्ञान में रुचि उत्पन्न हुई।

क्रियाकलाप 3

दाईं ओर दिए गए उद्धरण पर टिप्पणी कीजिए। क्या आज के विद्यार्थी के लिए यह प्रासंगिक होगा?

आदर्श विद्यार्थी

बारहवीं शताब्दी के बग़दाद में कानून और चिकित्सा के विषयों के विद्वान अब्द अल-लतीफ़ (Abd al-Latif) अपने आदर्श विद्यार्थी से बात कर रहे हैं:

"मेरा अनुरोध है कि आप बिना किसी की सहायता के, केवल पुस्तकों से ही, विज्ञान न सीखें, चाहे आपको समझने की अपनी योग्यता पर भरोसा हो। उन्हें प्रत्येक विषय के लिए, जिसका ज्ञान आप प्राप्त करना चाहते हों, अध्यापकों का सहारा लें, और यदि आपके अध्यापक का ज्ञान सीमित हो, तो जो कुछ वह दे सकता है उसे प्राप्त कर लें, जब तक आपको उससे योग्य अध्यापक न मिल जाए। आपको अपने अध्यापक का आदर और सम्मान अवश्य करना चाहिए। जब आप कोई पुस्तक पढ़ें, तो उसे कंठस्थ करने और उसके अर्थ पर पूर्ण अधिकार प्राप्त कर लें। मान लो कि पुस्तक खो गई है और आप उसे छोड़ सकते हैं तब पुस्तक कंठस्थ होने पर आपका कुछ नहीं बिगड़ेगा। व्यक्ति को इतिहास की पुस्तकें पढ़नी चाहिए, जीवनियों और राष्ट्रों के अनुभवों का अध्ययन करना चाहिए। ऐसा करने से यह लगेगा कि पढ़ने वाला अपने अल्प जीवन-काल में अतीत के लोगों के साथ रह रहा है। उनके साथ उसके घनिष्ठ संबंध हैं और उनमें अच्छों और बुरों को पहचानता है। आपको अपना आचरण शुरू के मुसलमानों के आचरण के अनुरूप बनाना चाहिए। इसलिए, पैगम्बर की जीवनी को पढ़ो और उनके पद-चिह्नों पर चलो। आपको अपने स्वभाव के बारे में अच्छी राय रखने की बजाय, उस पर बारंबार अविश्वास करना चाहिए, अपना ध्यान विद्वान लोगों और उनकी कृतियों पर लगाना चाहिए, बहुत सावधानी से आगे बढ़ना चाहिए और कभी भी जल्दबाज़ी नहीं करनी चाहिए। जिस व्यक्ति ने अध्ययन का दबाव न झेला हो, वह ज्ञान के आनंद का मज़ा नहीं ले सकता। जब आपने अपना अध्ययन और चिंतन-मनन पूरा कर लिया हो, तो अपनी जीभ को अल्लाह का नाम लेने के कार्य में व्यस्त रखिए और अल्लाह का गुणगान कीजिए। यदि संसार आपकी ओर पीठ मोड़ ले, तो शिकायत न करें। यह जान लें कि ज्ञान कभी खत्म नहीं होता, वह पीछे अपनी सुगंध छोड़ जाता है, जो उसके स्वामी का पता बता देती है ज्ञान प्रकाश और कांति की किरण ज्ञानी पर चमकती रहती है और उसकी ओर संकेत करती रहती है।"

– अहमद इब्न अल क़ासिम इब्न अबी उसयबिया, *उयून अल अन्बा*

© NCERT not to be republished

नए विषयों के अध्ययन ने आलोचनात्मक जिज्ञासा को बढ़ावा दिया और इस्लामी बौद्धिक जीवन पर गहरा प्रभाव डाला। धर्म वैज्ञानिक प्रवृत्तियों वाले विद्वानों जैसे मुतज़िला के नाम से जाने गए विद्वानों के समूह ने इस्लामी विश्वासों की रक्षा के लिए यूनानी तर्क और विवेचना *(कलाम)* के तरीकों का इस्तेमाल किया। दार्शनिकों *(फलसिफा)* ने व्यापक प्रश्न प्रस्तुत किए और उनके नए उत्तर प्रदान किए। इब्न सिना (980–1037) का, जो व्यवसाय की दृष्टि से एक चिकित्सक और दार्शनिक था, यह विश्वास नहीं था कि क़यामत के दिन व्यक्ति फिर से जिंदा हो जाता था। धर्मवैज्ञानिकों ने इसका ज़ोरदार विरोध किया। चिकित्सा संबंधी उनके लेख व्यापक रूप से पढ़े जाते थे। उनकी सबसे प्रभावशाली पुस्तक *चिकित्सा के सिद्धांत (अल-क़ानून फिल तिब)* थी, जो दस लाख शब्दों वाली पांडुलिपि थी, जिसमें उस समय के औषधशास्त्रियों द्वारा बेची जाने वाली 760 औषधियों का उल्लेख किया गया है और उसके द्वारा अस्पतालों *(बीमारिस्तान)* में किए गए प्रयोगों तथा अनुभवों की जानकारी भी दी गई है। इस पुस्तक में आहार-विज्ञान (आहार के विनियमन के ज़रिए उपचार) के महत्त्व पर प्रकाश डाला गया है। यह बताया गया है कि जलवायु और पर्यावरण का स्वास्थ्य पर क्या प्रभाव पड़ता है, और कुछ रोगों के संक्रामक स्वरूप की जानकारी दी गई है। इस पुस्तक का उपयोग यूरोप में एक पाठ्यपुस्तक के रूप में किया जाता था जहाँ लेखक को एविसेन्ना के नाम से जाना जाता था (देखिए विषय 7)। यह कहा जाता है कि वैज्ञानिक और कवि उमर खय्याम अपनी मृत्यु से ठीक पहले यह पुस्तक पढ़ रहे थे। उनकी सोने की दाँत-कुरेदनी इस पुस्तक के तत्वमीमांसा विषयक अध्याय के दो पृष्ठों के बीच पड़ी मिली थी।

मध्यकालीन इस्लामी समाजों में, बढ़िया भाषा और सृजनात्मक कल्पना को किसी व्यक्ति के सर्वाधिक सराहनीय गुणों में शामिल किया जाता था। ये गुण किसी भी व्यक्ति की विचार-अभिव्यक्ति को *अदब* के स्तर तक ऊँचा उठा देते थे। 'अदब' जिसका अर्थ है साहित्यिक और सांस्कृतिक परिष्कार। अदब रूपी अभिव्यक्तियों में पद्य (*नज़्म* अथवा सुव्यवस्थित विन्यास) और गद्य (*नथ्र* अथवा बिखरे हुए शब्द) शामिल थे और यह अपेक्षा की जाती थी कि उन्हें कंठस्थ कर लिया जाएगा और अवसर आने पर उनका उपयोग किया जाएगा। इस्लाम-पूर्व काल की सबसे अधिक लोकप्रिय रचना संबोधन गीत *(कसीदा)* था। अपने आश्रयदाताओं की उपलब्धियों का गुणगान करने के लिए अब्बासी काल के कवियों द्वारा इस विधा का विकास किया गया। फ़ारस मूल के कवियों ने अरबी कविता का पुन: आविष्कार किया और उसमें नयी जान फूँकी और अरबों के सांस्कृतिक आधिपत्य को चुनौती दी। अबु नुवास (मृत्यु 815 में) जो फ़ारसी मूल का था, ने इस्लाम द्वारा वर्जित आनंद मनाने के इरादे से शराब और पुरुष-प्रेम जैसे नए विषयों पर उत्कृष्ट श्रेणी की कविताओं की रचना करके नया मार्ग चुना। अबु नुवास के बाद, कवियों ने अपने अनुराग के पात्र को पुरुष के रूप में संबोधित किया, चाहे वह स्त्री हो। इसी परंपरा का अनुसरण करते हुए, सूफ़ियों ने रहस्यवादी प्रेम की मदिरा द्वारा उत्पन्न मस्ती का गुणगान किया।

जब अरबों ने ईरान पर विजय प्राप्त की, तब पहलवी, जो प्राचीन ईरान की पवित्र पुस्तकों की भाषा थी, पतन की स्थिति में थी। शीघ्र ही पहलवी का एक और रूप, जिसे नयी फारसी कहा जाता है, विकसित हुआ, जिसमें अरबी के शब्दों की संख्या बहुत अधिक थी। खुरासान और तुरान सल्तनतों की स्थापना से नयी फ़ारसी बड़ी सांस्कृतिक ऊँचाइयों पर पहुँच गई। समानी राज़दरबार के कवि, रुदकी (मृत्यु 940 में), को नयी फ़ारसी कविता का जनक माना जाता था; इस कविता में छोटे गीत-काव्य *(गज़ल)* और चतुष्पदी *(रुबाई)* जैसे नए रूप शामिल थे। *रुबाई*

चार पंक्तियों वाला छंद होता है, जिसमें पहली दो पंक्तियाँ भूमिका बाँध देती हैं, तीसरी पंक्ति बढ़िया तरीके से सधी होती है, और चौथी पंक्ति मुख्य बात प्रस्तुत करती है। इसके रूप के विपरीत, *रुबाई* की विषय-वस्तु अप्रतिबंधित होती है। इसका इस्तेमाल प्रियतम अथवा प्रेयसी के सौंदर्य का बखान करने, संरक्षक की प्रशंसा करने, अथवा दार्शनिक के विचारों को अभिव्यक्त करने के लिए किया जा सकता है। *रुबाई* (बहुवचन *रुबाइयात* है) उमर खय्याम के हाथों अपनी पराकाष्ठा पर पहुँच गई। उमर खय्याम (1048-1131) एक खगोल वैज्ञानिक और गणितज्ञ भी थे, जो विभिन्न समयों पर बुखारा, समरकंद और इस्फाहान में रहे थे।

13वीं शताब्दी की अरबी पांडुलिपि का एक लघुचित्र, जिसमें दिमना शेर (असद) से बात कर रहा है।

ग्याहरवीं शताब्दी के प्रारंभ में, गज़नी फ़ारसी साहित्यिक जीवन का केंद्र बन गया था। कवि स्वाभाविक रूप से शाही दरबारों की चमक-दमक से आकर्षित होते थे। शासकों ने भी अपनी प्रतिष्ठा को बढ़ाने के लिए कलाकारों और विद्वानों को संरक्षण देने के महत्त्व को समझ लिया था। गज़नी के महमूद ने अपने चारों ओर कवियों का एक समूह एकत्र कर लिया था, जिन्होंने काव्य-संग्रहों *(दीवानों)* और महाकाव्यों *(मथनवी)* की रचना की। इनमें सबसे अधिक प्रसिद्ध फिरदौसी (मृत्यु 1020 में) थे, जिन्हें *शाहनामा* (राजाओं का जीवनचरित) को पूरा करने में 30 वर्ष लग गए; इस पुस्तक में 50,000 पद हैं और यह इस्लामी साहित्य की एक श्रेष्ठ कृति मानी जाती है। *शाहनामा* परंपराओं और आख्यानों का संग्रह है (जिनमें सबसे अधिक लोकप्रिय आख्यान रुस्तम का है), जिसमें प्रारंभ से लेकर अरबों की विजय तक ईरान का चित्रण काव्यात्मक शैली में किया गया है। यह गज़नवी परंपरा के अनुरूप ही था कि बाद में भारत में फ़ारसी प्रशासन और संस्कृति की भाषा बन गई।

बग़दाद के एक पुस्तक-विक्रेता, इब्न नदीम (मृत्यु 895) की पुस्तक सूची *(किताब अल-फिहरिस्त)* में ऐसी बहुत-सी पुस्तकों का उल्लेख है, जो पाठकों की नैतिक शिक्षा और उनके मनोरंजन के लिए लिखी गई थीं। इनमें सबसे पुरानी पुस्तक जानवरों की कहानियों का संग्रह है, जिसका नाम *कलीला व दिमना* (दो गीदड़ों के नाम, जो उसके मुख्य पात्र थे) है। यह पुस्तक *पंचतंत्र* के पहलवी संस्करण का अरबी अनुवाद है। सबसे अधिक प्रचलित और स्थायी रचनाएँ वीर-साहसियों की कहानियाँ हैं, जैसे अल-सिकंदर और सिन्दबाद और दुखी प्रेमियों, जैसे कायस (जिसे मजनू यानि कि पागल व्यक्ति कहा जाता था) की कहानियाँ। ये कहानियाँ कई शताब्दियों में मौखिक अथवा लिखित परंपराओं के रूप में विकसित हुई हैं। *'एक हज़ार एक रातें'* (थाउजेंड एण्ड वन नाइट्स) कहानियों का एक अन्य संग्रह है। ये कहानियाँ एक ही वाचिका, शहरज़ाद द्वारा अपने पति को एक के बाद दूसरी रात को सुनाई गई थीं। ये संग्रह मूल रूप से भारतीय फ़ारसी भाषा में था और बग़दाद में इसका अनुवाद अरबी भाषा में किया गया था। बाद में मामलुक काल में काहिरा में इसमें और कहानियाँ जोड़ दी गई थीं। ये कहानियाँ विभिन्न किस्मों के मनुष्यों-उदार, मूर्ख, भोले-भाले और धूर्त मनुष्यों का चित्रण करती हैं और शिक्षा देने और मनोरंजन करने के लिए

© NCERT not to be republished

सुनाई गई थीं। बसरा के जहीज़ (मृत्यु 868 में) ने अपनी पुस्तक *किताब अल-बुखाला* (कंजूसों की पुस्तक) में कंजूसों के बारे में मन बहलाने वाले किस्से इकट्ठे किए थे और लालच का विश्लेषण किया था।

नौवीं शताब्दी से, *अदब* के दायरे का विस्तार किया गया और उसमें जीवनियों, आचार संहिताओं *(अखलाक़)*, राजकुमारों को शासनकला की शिक्षा देने वाली पुस्तकों और सबसे ऊपर, इतिहास और भूगोल को शामिल किया गया। पढ़े-लिखे मुस्लिम समाजों में इतिहास लिखने की परंपरा अच्छी तरह स्थापित थी। इतिहास की पुस्तकें विद्वानों और विद्यार्थियों द्वारा और इनके अलावा अधिक पढ़े-लिखे लोगों द्वारा पढ़ी जाती थीं। इतिहास शासकों और अधिकारियों के लिए किसी वंश की कीर्ति बढ़ाने वाले कारनामों और उपलब्धियों का अच्छा विवरण और प्रशासन की तकनीकों के उदाहरण प्रस्तुत करता था। इतिहास के दो प्रमुख ग्रंथों, बालाधुरी (मृत्यु 892 में) के *अनसब अल-अशरफ* (सामंतों की वंशावलियाँ) और ताबरी के *तारीख अल-रसूल वल मुलुक* (पैगम्बरों और राजाओं का इतिहास) में समूचे मानव इतिहास का वर्णन किया गया है, जिसमें इस्लामी काल केंद्र-बिंदु है। स्थानीय इतिहास-लेखन की परंपरा का विकास खिलाफत के विघटन के बाद हुआ। इस्लामी जगत की एकता और विविधता के अन्वेषण के लिए फ़ारसी में वंशों, नगरों और प्रदेशों के बारे में पुस्तकें लिखी गईं।

भूगोल और यात्रा वृत्तांत *(रिहला)* अदब की एक विशेष विधा बन गए। इनमें यूनानी, ईरानी और भारतीय पुस्तकों के ज्ञान और व्यापारियों तथा यात्रियों के विचारों एवं कथनों को शामिल किया गया। गणितीय भूगोल में, बसे हुए संसार को भूमध्यरेखा के समानान्तर, हमारे तीन महाद्वीपों के अनुरूप, सात किस्म की जलवायु *('क्लाइम' एकवचन इक्लिम)* में विभाजित किया गया। प्रत्येक शहर की बिलकुल सही स्थिति का निर्धारण खगोल-वैज्ञानिक तरीके से किया गया। मुकदसी (मृत्यु 1000 में) का वर्णनात्मक भूगोल (*अहसान अल-तकसीम* अथवा सर्वोत्तम विभाजन) विश्व के सभी देशों के लोगों का तुलनात्मक अध्ययन है और विदेशों के बारे में उठी जिज्ञासाओं को शांत करने वाला खज़ाना है। विश्व की संस्कृतियों की व्यापक विविधता दर्शाने के लिए मसूदी की (943 में लिखी) पुस्तक *मुरुज अल-धाहाब* (स्वर्णिम घासस्थली) में भूगोल और सामान्य इतिहास को मिला दिया गया था। अल्बरुनी की प्रसिद्ध पुस्तक *तहकीक मा लिल-हिंद* (भारत का इतिहास) ग्याहरवीं शताब्दी के एक मुस्लिम लेखक का इस्लाम की दुनिया से बाहर देखने और यह जानने का सबसे बड़ा प्रयास था कि एक अन्य सांस्कृतिक परंपरा में क्या चीज़ कीमती है।

8वीं शताब्दी, फिलिस्तीन के खिरबत-अल-मफ़जर महल के स्नानगृह का फ़र्श। इस पर सुन्दर पच्चीकारी की गई है। कल्पना कीजिए कि इस पेड़ पर खलीफ़ा विराजमान है। नीचे दिए गए दृश्य में शांति व युद्ध का चित्रण किया गया है।

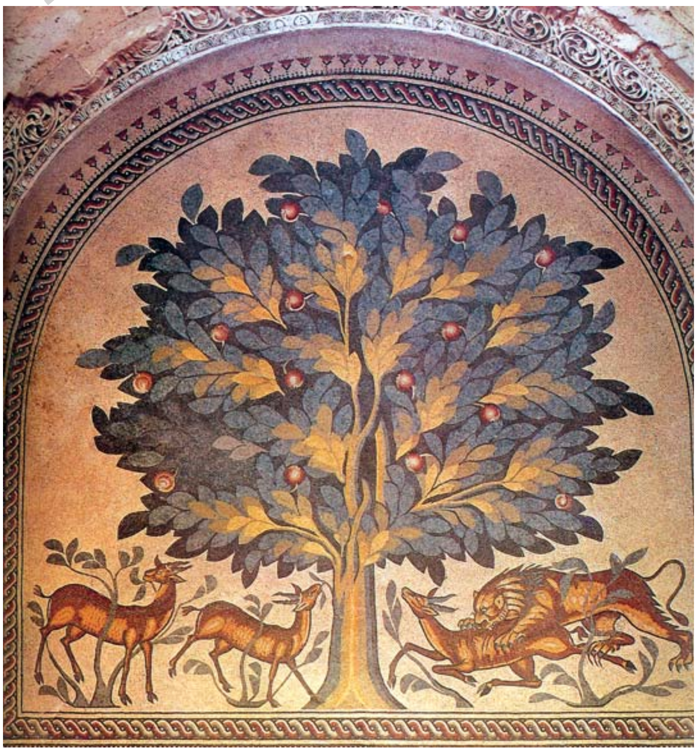

दसवीं शताब्दी तक एक ऐसी इस्लामी दुनिया उभर आई थी, जिसे यात्री आसानी से पहचान सकते थे। धार्मिक इमारतें इस दुनिया की सबसे बड़ी बाहरी प्रतीक थीं। स्पेन से मध्य एशिया तक फैली हुई मस्जिदें, इबादतगाह और मकबरों का बुनियादी नमूना एक जैसा था –मेहराबें, गुम्बद, मीनार और खुले सहन और ये इमारतें मुसलमानों की आध्यात्मिक और व्यावहारिक ज़रूरतों को अभिव्यक्त करती थीं। इस्लाम की पहली शताब्दी में, मस्जिद ने एक विशिष्ट वास्तुशिल्पीय रूप (खंभों के सहारे वाली छत) प्राप्त कर लिया था जो प्रादेशिक विभिन्नताओं से परे था। मस्जिद में एक खुला

© NCERT not to be republished

इस्लामी सजावटी प्रतिभा धातु-वस्तुओं की कला में पूरी तरह प्रकट हुई। इन धातु वस्तुओं को अच्छी तरह सुरक्षित रखा गया है। 14वीं शताब्दी, सीरिया की एक मस्जिद के दीपक पर प्रसिद्ध 'प्रकाश' पद अंकित है।

'ईश्वर स्वर्ग और धरती का नूर है उसका प्रकाश दीपक (मिस्बह) वाले आले (मिश्कत) के समान है। चिराग़ शीशे के अंदर है जो चमकते हुए सितारे की तरह दिखाई देता है जो सौभाग्यशाली जैतून के वृक्ष से प्रदीप्त है जो न तो पूर्वी है और न पश्चिमी जिसका तेल हमेशा चमकता रहेगा चाहे उसे कोई अग्नि स्पर्श न करे।'

(क़ुरान, अध्याय 24, पद 35)

प्राँगण सहन होता था, जहाँ पर एक फव्वारा अथवा जलाशय बनाया जाता था और यह प्राँगण एक बड़े कमरे की ओर खुलता, जिसमें प्रार्थना करने वाले लोगों की लंबी पंक्तियों और प्रार्थना *(नमाज़)* का नेतृत्व करने वाले व्यक्ति *(इमाम)* के लिए पर्याप्त स्थान होता था। बड़े कमरे की दो विशेषताएँ थीं जो आज तक महत्त्वपूर्ण हैं: दीवार में एक मेहराब, जो मक्का *(किबला)* की दिशा का संकेत देती है और एक मंच *(मिम्बर)* जहाँ से शुक्रवार को दोपहर की नमाज़ के समय प्रवचन दिए जाते हैं। इमारत में एक मीनार जुड़ी होती है जिसका उपयोग नियत समयों पर प्रार्थना हेतु लोगों को बुलाने के लिए किया जाता है। मीनार नए धर्म के अस्तित्व का प्रतीक है। शहरों और गाँवों में लोग समय का अंदाजा पाँच दैनिक प्रार्थनाओं और साप्ताहिक प्रवचनों की सहायता से लगाते थे।

केंद्रीय प्राँगण *(इवान)* के चारों ओर निर्मित इमारतों के निर्माण का वही स्वरूप न केवल मस्जिदों और मकबरों में, बल्कि काफिलों की सरायों, अस्पतालों और महलों में भी पाया जाता था। उमय्यदों ने नखलिस्तानों में 'मरुस्थली महल' बनाए, जैसे फिलिस्तीन में खिरबत अल-मफजर और जोर्डन में कुसाईर अमरा, जो ठाठदार और विलासपूर्ण निवास-स्थानों और शिकार और मनोरंजन के लिए विश्राम-स्थलों के रूप में काम आते थे। महलों को, जो रोमन और ससानी वास्तुशिल्प के तरीके से बनाए गए थे, लोगों के चित्रों, प्रतिमाओं और पच्चीकारी से भव्य रूप से सजाया जाता था। अब्बासियों ने समरा में बागों और बहते हुए पानी के बीच एक नया शाही शहर बनाया जिसका ज़िक्र हारुन-अल-रशीद (Harun al-Rashid) से जुड़ी कहानियों और आख्यानों में किया जाता है। बग़दाद में अब्बासियों के विशाल महल अथवा काहिरा में फातिमियों के महल लुप्त हो गए हैं; और अब केवल साहित्यिक पुस्तकों में उनका संकेत मिलता है।

इस्लामी धार्मिक कला में प्राणियों के चित्रण की मनाही से कला के दो रूपों को बढ़ावा मिला: खुशनवीसी (*खत्ताती* अथवा सुन्दर लिखने की कला) और अरबेस्क (ज्यामितीय और वनस्पतीय डिज़ाइन)। इमारतों (वास्तुशिल्प) को सजाने के लिए आमतौर पर धार्मिक उद्धरणों का छोटे और बड़े शिलालेखों में उपयोग किया जाता था। कुरान की आठवीं और नौवीं शताब्दियों की पांडुलिपियों में खुशनवीसी की कला को सर्वोत्तम रूप में सुरक्षित रखा गया है। *किताब अल-अघानी* (गीत पुस्तक), *कलीला व दिमना* और *हरिरी की मकामात,* जैसी साहित्यिक कृतियों को लघुचित्रों से सजाया गया था। इसके अलावा, पुस्तक के सौंदर्य को बढ़ाने के लिए चित्रावली की बहुत सी किस्मों की तकनीकें शुरू की गई थीं। इमारतों और पुस्तकों के चित्रण में उद्यान की कल्पना पर आधारित पौधों और फूलों के नमूनों का उपयोग किया जाता था।

जिन इस्लामी क्षेत्रों का हमने अध्ययन किया है उनके इतिहास में मानव सभ्यता के तीन पहलू महत्त्वपूर्ण रहे हैं: धर्म, समुदाय एवं राजनीति। इन्हें हम तीन गोले मान सकते हैं। सातवीं शताब्दी में ये तीनों गोले एक-दूसरे पर इस तरह बैठे हुए थे कि वह सब एक गोला ही लगते थे। अगली पाँच शताब्दियों में ये गोले अलग-अलग हो गए। 1200 तक आते-आते इस्लाम का प्रभाव राज्य व सरकार पर न्यूनतम हो गया। इस काल में राजनीति से कई ऐसी चीज़ें जुड़ गई जिनकी कोई धार्मिक वैधता नहीं थी (जैसे राजतंत्र की संस्था, गृहयुद्ध आदि)। लेकिन अभी भी धर्म व समुदाय के गोले एक ही थे। निजी मामलों और रीतियों में शरीया से मुस्लिम समुदाय प्रभावित था और यह बात उसकी एकता का महत्त्वपूर्ण कारण भी था। इस्लाम के धार्मिक कुलीन शासन नहीं चला रहे थे (राजनीति का गोला भिन्न था), लेकिन वे धार्मिक अस्मिता को परिभाषित कर रहे थे। धर्म व समुदाय के गोलों का अलग होना मुस्लिम समाज के क्रमिक सांसारीकरण (Secularisation) के ज़रिए ही संभव था। कुछ दार्शनिक व सूफ़ी ऐसे सांसारीकरण की सलाह देते थे। उनका सुझाव था कि नागरिक समाज को धर्म से स्वतंत्र हो जाना चाहिए और रीतियों व कर्मकांडों की जगह निजी आध्यात्मिकता को ले लेनी चाहिए।

© NCERT not to be republished

क्रियाकलाप 4

इस अध्याय के कौन से चित्र आपको सबसे अच्छे लगे और क्यों?

595	पैगम्बर मुहम्मद की खदीजा से शादी। खदीजा मक्का में व्यापार करती थीं और धनी थीं। आगे चलकर उन्होंने इस्लाम का समर्थन किया
610-12	पैगम्बर मुहम्मद का प्रथम रहस्योद्घाटन, 612 में पहला सार्वजनिक उपदेश
621	मदीना के धर्मांतरित मुसलमानों के साथ अकाबा में पहला समझौता
622	मक्का से मदीना हिजरत (स्थानांतरण)। मदीना के अरब कबीलों (अंसर) ने मक्का से आने वाले मुहाजिरों को पनाह दी
632-61	खिलाफत के प्रारंभिक वर्ष। सीरिया, इराक, ईरान व मिस्र पर विजय; गृहयुद्ध
661-750	उमय्यद शासन; दमिश्क का राजधानी बनना
750-945	अब्बासी शासन; बग़दाद का राजधानी बनना
945	बग़दाद पर बुहाइयों का कब्ज़ा; साहित्यिक व सांस्कृतिक प्रस्फुटन
1063-92	निज़ामुल मुल्क का शासन। यह एक शक्तिशाली सल्जुक वज़ीर थे, जिन्होंने कई मदरसों की स्थापना की, जिन्हें इकट्ठे निज़ामिया कहा जाता है। निज़ामुल मुल्क की हत्या
1095-1291	धर्मयुद्ध; मुसलमानों व ईसाइयों में संपर्क
1111	प्रभावशाली ईरानी विद्वान गज़ली, जिन्होंने बुद्धिवाद का विरोध किया, की मृत्यु
1258	मंगोलों ने बग़दाद पर कब्ज़ा किया

© NCERT not to be republished

अभ्यास

संक्षेप में उत्तर दीजिए

1. सातवीं शताब्दी के आरंभिक दशकों में बेदुइओं के जीवन की क्या विशेषताएँ थीं?
2. 'अब्बासी क्रांति' से आपका क्या तात्पर्य है?
3. अरबों, ईरानियों व तुर्कों द्वारा स्थापित राज्यों की बहुसंस्कृतियों के उदाहरण दीजिए?
4. यूरोप व एशिया पर धर्मयुद्धों का क्या प्रभाव पड़ा?

संक्षेप में निबंध लिखिए

5. रोमन साम्राज्य के वास्तुकलात्मक रूपों से इस्लामी वास्तुकलात्मक रूप कैसे भिन्न थे?
6. रास्ते पर पड़ने वाले नगरों का उल्लेख करते हुए समरकंद से दमिश्क तक की यात्रा का वर्णन कीजिए।